ISSN 970-9312

प्राथमिक शिक्षक

शैक्षिक संवाद की पत्रिका

वर्ष 37 अंक 3 जुलाई 2013

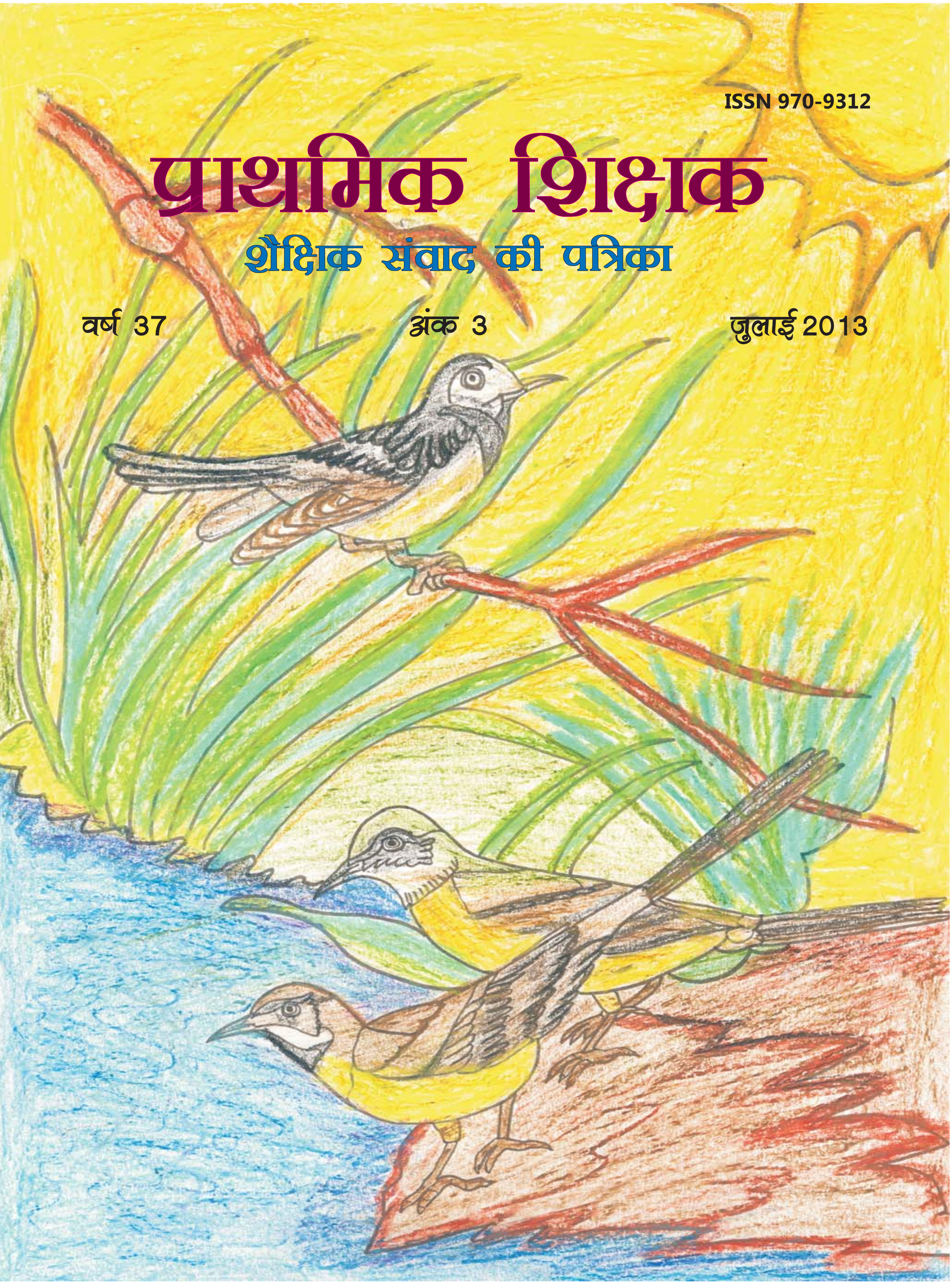

'प्राथमिक शिक्षक' राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् की एक त्रैमासिक पत्रिका है। इस पत्रिका का मुख्य उद्देश्य है, शिक्षकों और संबद्ध प्रशासकों तक केंद्रीय सरकार की शिक्षा नीतियों से संबंधित जानकारियाँ पहुँचाना, उन्हें कक्षा में प्रयोग में लाई जा सकने वाली सार्थक और संबद्ध सामग्री प्रदान करना और देश भर के विभिन्न केंद्रों में चल रहे पाठ्यक्रमों और कार्यक्रमों आदि के बारे में समय पर अवगत कराते रहना। शिक्षा जगत् में होने वाली गतिविधियों पर विचारों के आदान-प्रदान के लिए भी यह पत्रिका एक मंच प्रदान करती है।

पत्रिका में प्रकाशित लेखों में व्यक्त किए गए विचार लेखकों के अपने होते हैं। अत: यह आवश्यक नहीं है कि प्रत्येक चिंतन में परिषद् की नीतियों को ही प्रस्तुत किया गया हो। इसलिए परिषद् का कोई उत्तरदायित्व नहीं है।

संपादकीय मंडल (अकादमिक)

लता पाण्डे

इंदु कुमार *रमेश कुमार*

प्रकाशन मंडल

अध्यक्ष, प्रकाशन प्रभाग : *अशोक श्रीवास्तव*

मुख्य उत्पादन अधिकारी : *कल्याण बनर्जी*

मुख्य संपादक : *श्वेता उप्पल*

मुख्य प्रबंध अधिकारी : *गौतम गांगुली*

संपादक : *रेखा अग्रवाल*

सहायक उत्पादन अधिकारी : *अब्दुल नईम*

आवरण चित्र

प्रिया, VIII बी, केंद्रीय विद्यालय
जे.एन.यू, एन.सी.ई.आर.टी. कैंपस, नयी दिल्ली

एन सी ई आर टी के प्रकाशन प्रभाग के कार्यालय

एन.सी.ई.आर.टी. कैंपस
श्री अरविंद मार्ग
नयी दिल्ली 110 016 **फोन : 011-26562708**

108, 100 फीट रोड
हेली एक्सटेंशन, होस्डेकेरे
बनाशंकरी III इस्टेज
बैंगलुरु 560 085 **फोन : 080-26725740**

नवजीवन ट्रस्ट भवन
डाकघर नवजीवन
अहमदाबाद 380 014 **फोन : 079-27541446**

सी.डब्ल्यू.सी. कैंपस
निकट: धनकल बस स्टॉप पनिहटी
कोलकाता 700 114 **फोन : 033-25530454**

सी.डब्ल्यू.सी. कॉम्प्लैक्स
मालीगांव
गुवाहाटी 781021 **फोन : 0361-2674869**

मूल्य एक प्रति ₹ 65.00 **वार्षिक ₹ 260.00**

प्राथमिक शिक्षक

वर्ष 37 | अंक 3 | जुलाई 2013

इस अंक में

संवाद 3

लेख

1. क्या-क्या ज़रूरी है एक कक्षा में? – रूथ रस्तोगी 5
2. पत्र कैसे लिखवाएँ – अक्षय कुमार दीक्षित 16
3. कह दो एक कहानी – लता पाण्डे 21
4. भाषा शिक्षण – राधा 27
5. बाल विकास के लिए खेल-खेल में शालापूर्व शिक्षा – कृष्ण चंद्र चौधरी 32
6. शिक्षा का अधिकार अधिनियम-2009 के क्रियान्वयन में गैर-सरकारी संगठनों की भूमिका – मंजू देवी 41
7. सतत एवं समग्र मूल्यांकन – मिलन सिंह 46
8. बच्चे एवं गणित का सीखना-सिखाना – सत्यवीर सिंह, अनिल कुमार 51

अनुभव

9. फील्ड विज़िट के दौरान पठन कौशल से संबंधित कुछ अनुभव – रौमिला सोनी 58

शोध

10. जवाहर नवोदय विद्यालय, गाज़ियाबाद के संदर्भ में एक समीक्षात्मक अध्ययन – रमेश कुमार, वीरेंद्र प्रताप सिंह 64

विद्या ऽ मृतमश्नुते

एन सी ई आर टी
NCERT

विद्या से अमरत्व प्राप्त होता है।

परस्पर आवेष्टित हंस राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् (एन.सी.ई.आर.टी.) के कार्य के तीनों पक्षों के एकीकरण के प्रतीक हैं–
(i) अनुसंधान और विकास,
(ii) प्रशिक्षण, तथा (iii) विस्तार।
यह डिज़ाइन कर्नाटक राज्य के रायचूर ज़िले में मस्के के निकट हुई खुदाइयों से प्राप्त ईसा पूर्व तीसरी शताब्दी के अशोकयुगीन भग्नावशेष के आधार पर बनाया गया है।
उपर्युक्त आदर्श वाक्य *ईशावास्य उपनिषद्* से लिया गया है जिसका अर्थ है–
विद्या से अमरत्व प्राप्त होता है।

पुस्तक के पन्नों से

11. प्राथमिक शाला में शिक्षक	-	गिजुभाई बधेका	69
– फ़ुर्सत में करने के काम			
– बाल मंदिर के शिक्षकों से			
– शिक्षक की स्वीकारोक्ति			
बालमन कुछ कहता है			
12. चित्रकथाएँ, कार्टून और किताबों में मज़ा	-	सृष्टि सहाय	76
प्राथमिक शिक्षक पत्रिका के बारे में			78
कविता			
13. छोटी-छोटी बातें	-	कृष्णा सहगल	79
14. गुड्डू का बचपन	-	नीलिमा	

संवाद

गर्मी की छुट्टियाँ समाप्त हुई और फिर से खुल गए हैं स्कूल। गर्मी की छुट्टियों से आने के बाद बच्चे एक नए उत्साह और उमंग से पूर्ण रहते हैं। अपने साथियों तथा शिक्षकों को बताने के लिए उनके पास बहुत सारी बातें रहती हैं। छुट्टियों में कहाँ गए, उनके घर कौन आया, उन्होंने क्या किया, कौन-सी नयी किताब पढ़ी, उनके मुहल्ले में क्या हुआ आदि कई बातें वह सबके साथ साझा करना चाहते हैं। लगभग दो माह के अंतराल के बाद सभी साथियों से मिलना उन्हें आनंदित कर देता है।

बच्चों के इसी उत्साह, उमंग और नयी ऊर्जा का इस्तेमाल सीखने-सिखाने की प्रक्रिया के दौरान किया जाए, तो सीखना भी बच्चों के लिए सहज और आनंदमय बन सकता है। सीखने-सिखाने के तरीके और माहौल बच्चों की रुचियों के अनुसार हो तो कुछ भी नया सीखने में बच्चों को देर नहीं लगती। प्राथमिक शिक्षक के इस अंक के लेख इसी बात को दृष्टिगत रखते हुए दिए गए हैं। 'क्या-क्या ज़रूरी है एक कक्षा में' लेख दर्शाता है कि कक्षा का वातावरण किस तरह से बनाया जाए कि सीखना बच्चे के लिए सरस बन जाए। भाषा का अस्तित्व शून्य में विकसित नहीं होता है। भाषा अन्य विषयों को भी साथ में लेकर चलती है। भाषा में बच्चे की समझ अच्छी है तो अन्य विषय सीखना भी उसके लिए सरल हो जाता है। इसीलिए एक लेख दिया गया है -'भाषा शिक्षण'। भाषा की कक्षा में आमतौर पर एक बँधे-बँधाए तरीके से पत्र लिखना सिखाया जाता है। कहानी सुनना बच्चों को बहुत भाता है। कहानी सुनाना भी एक कला है। इसी पर आधारित है लेख 'कह दो एक कहानी।' अधिकांश बच्चों को गणित से डर लगता है। किस प्रकार से गणित को लेकर मन में व्याप्त भय को दूर कर गणित सीखना सरस बने, 'बच्चे एवं गणित का सीखना-सिखाना' लेख इस दिशा में शिक्षकों का मार्गदर्शन करता है। किसी भी विषय को सीखने-सिखाने की प्रक्रिया के दौरान ही यदि सतत् एवं समग्र रूप से आकलन भी होता रहे तो बच्चे के सीखने के दौरान आने वाली कठिनाइयों को समय पर ही दूर करते हुए सीखने में उसकी मदद की जा सकती है। 'सतत् एवं समग्र मूल्यांकन' लेख इसी उद्देश्य से दिया गया है।

शिक्षा का अधिकार अधिनियम–2009 छह से चौदह वर्ष तक की आयु के सभी बच्चों को शिक्षा का अधिकार देता है। इस अधिनियम को लागू करने में गैर-सरकारी संगठनों की भूमिका जानने के लिए पढ़िए लेख 'शिक्षा का अधिकार अधिनियम–2009 के क्रियान्वयन में गैर-सरकारी संगठनों की भूमिका'।

प्रसिद्ध शिक्षाविद् गिजुभाई बधेका को शिक्षा जगत से जुड़ा भला कौन व्यक्ति नहीं जानता? प्राथमिक शिक्षा से संबंधित अनेक पुस्तकें उन्होंने लिखी हैं। इन्हीं में एक पुस्तक 'प्राथमिक शाला में शिक्षक' से कुछ अंश दिए जा रहे हैं जिनमें दी गई बातों को जानना हर प्राथमिक शिक्षक के लिए ज़रूरी और उपयोगी है।

प्रत्येक अंक की तरह ही इस अंक में भी 'बालमन कुछ कहता है' स्तंभ के अंतर्गत बच्चों के मन की बातें दी गई हैं और पत्रिका के इस अंक में भी हर अंक की तरह एक कविता दी गई है।

आपको प्राथमिक शिक्षक का यह अंक कैसा लगा? आपकी प्रतिक्रिया और विचारों का स्वागत है।

अकादमिक संपादक

लेख

1

क्या-क्या ज़रूरी है एक कक्षा में?*

रूथ रस्तोगी

आमतौर पर किसी कक्षा में श्यामपट्ट के अलावा बस कुछ पुराने धूल-धूसरित चार्ट ही देखने को मिलते हैं। लेखिका ने अपने अनुभवों के आधार पर विस्तार से दर्शाने का प्रयास किया है कि एक कक्षा के अंदर कितना कुछ संभव है अगर हम थोड़ा-सा खुलकर सोचें और थोड़ी-सी ज़हमत उठाएँ।

शुरुआत अपने घर से ही करते हैं। जिस तरह घर में खाना पकाने के लिए रसोईघर और बातचीत करने, टी.वी. देखने व अन्य सामाजिक गतिविधियों के लिए बैठकखाना और सोने के लिए शयन कक्ष का अपना महत्त्व है, उसी तरह सीखने-सिखाने के लिए एक क्लासरूम कैसा होना चाहिए- इसका भी उतना ही महत्त्व है। अगर आपके रसोईघर में केवल गैस हो, एक नल हो और कुछ बर्तन तो आप कितने भी रचनात्मक क्यों न हों, इससे आप क्या पका सकते हैं? शायद कुछ नहीं। अगर साथ में आटा हो, तो चपाती से ज़्यादा कुछ नहीं बन सकता और अगर आटे के अलावा नमक व तेल भी हो तो शायद ज़्यादा-से-ज़्यादा पराठा, पूरी या नमकीन बनाए जा सकते हैं।

क्या कोई व्यक्ति ऐसा रसोईघर पसंद करेगा जिसमें सिर्फ आटा, नमक और तेल हो, जिनसे केवल एक-दो खाद्य-पदार्थ ही बनाए जा सकें? शायद नहीं। हर कोई चाहेगा कि रसोईघर में सब्ज़ियाँ, जीरा, धनिया, अन्य मसाले और शक्कर भी हो। कहने का मतलब यह है कि रसोईघर में जितनी अधिक सामग्री होगी, उतने ही विविधता पूर्ण पकवान बनाना संभव हो पाएगा।

जो बात रसोईघर पर लागू होती है वो कक्षा पर भी लागू हो सकती है। आप खुद को एक शिक्षक के रूप में रखकर सोचिए- सिर्फ ब्लैक-बोर्ड, कुछ चॉक के टुकड़े और डस्टर वाली कक्षा में आप कितना सिखा पाएँगे और बच्चे कितना सीख पाएँगे?

मेरे ख्याल से कक्षा ऐसी होनी चाहिए जहाँ सीखने की गुंजाइश हो। एक बच्चा शिक्षक के व्याख्यान के बजाय अपने अनुभव से अधिक सीखता है। उसके आस-पास जो घट रहा है, वह उसे किस्सों, कहानियों, गुड्डों-गुड़ियाओं

* एकलव्य द्वारा प्रकाशित पत्रिका *शैक्षणिक संदर्भ* (मूल अंक 58) से साभार

के खेल, चित्र बनाना, किताबें पढ़ना और अन्य खेलों के माध्यम से संप्रेषित करते हुए बहुत कुछ सीखता है। बच्चा तभी सीखेगा, उसमें रचनात्मकता का तभी विकास होगा, जब क्लास रूम में शिक्षक गतिविधियाँ करवाएगा। अगर कक्षा में जगह नहीं है तो बरामदे का इस्तेमाल किया जा सकता है। या डेस्क एक कोने में लगाकर भी जगह की जुगाड़ बनाई जा सकती है। अगर फिर भी जगह नहीं है तो काफी सारी सामग्री जूतों के डिब्बों या खुले ताक में रखी जा सकती है। बच्चे अपनी ज़रूरत के मुताबिक सामग्री यहाँ से उठाकर अपनी डेस्क पर ले जा सकते हैं।

क्या यह शिक्षा है?

आप पूछ सकते हैं कि रेत या मिट्टी से खेलकर या साँप-सीढ़ी/लूडो खेलने से बच्चा क्या शिक्षा हासिल करेगा? ज़रा सोचिए, दरअसल इससे बच्चों की शारीरिक, मानसिक व सामाजिक रूप से सक्रिय रहने की आंतरिक ज़रूरत पूरी होती है। अगर गतिविधियों के लिए आप समय नहीं भी देंगे, तब भी बच्चा समय निकाल ही लेगा, भले ही आप पसंद करें या न करें। आपने अकसर बच्चों को अपने बस्ते या पेंसिल बॉक्स को खोलते व बंद करते, पेंसिल को नुकीला बनाते, टिफिन बॉक्स खँगालते या बाथरूम आते-जाते देखा ही होगा।

अगर आप औपचारिक शिक्षा का समय कम कर देंगे तो बच्चे आपकी बातों की तरफ ज़्यादा ध्यान देंगे क्योंकि उन्हें पता रहेगा कि आप उन्हें जल्द ही पाठ्येतर गतिविधियों में भाग लेने की अनुमति दे देंगे। जब बच्चे अपनी योजनाओं और उनके क्रियान्वयन पर चर्चा करते हैं तो वे आत्मनिर्भर, आत्मविश्वासों और रचनात्मक बनना सीख रहे होते हैं। साथ ही वे यह भी सीखते हैं कि दूसरों के साथ मिलकर काम कैसे किया जाए। वे विभिन्न पदार्थों के गुणधर्मों के बारे में सीखते हैं। वे ज़िम्मेदार बनना और किसी वस्तु को वापस अपने स्थान पर रखना सीखते हैं। उन्हें समझ में आता है कि ये सब चीज़ें इकट्ठी करके उनकी भरपाई करनी होगी। वे व्यवहार देखते हैं और भावनाओं की अनुभूति करते हैं। यही नहीं, वे दूसरे बच्चों से भी सीखते हैं। इसलिए बच्चों को समय देना बहुत ज़रूरी है, ताकि उन्हें अपनी गतिविधियों को बार-बार करने का मौका मिल सके और वे अपनी समझ व रचनात्मकता को परिष्कृत कर सकें।

बच्चे स्वस्थ व प्रसन्नचित रहें, इसके लिए उनका खेलना ज़रूरी है। एक शिक्षिका होने के नाते आप उनकी खेलने में मदद कर सकती हैं और साथ ही अपने शैक्षणिक मकसद को भी पूरा कर सकती हैं। उदाहरण के लिए कहानियाँ सुनाना और किताबें पढ़ना अत्यंत संतोषप्रद हो सकता है। जो बच्चे पढ़ना जानते हैं, वे अगर दूसरे बच्चों को पढ़कर सुनाते हैं, तो उनकी पढ़ने की क्षमता बेहतर बनती है। अगर औपचारिक पाठ के बीच में छूट हो कि वे अपनी मर्ज़ी से अपनी पसंद की कहानियाँ या कविताओं की किताब उठा सकते हैं, तो बच्चों को किताबों में आनंद आने लगता है।

सक्रिय कक्षा का प्रबंधन

एक सक्रिय कक्षा का निर्माण निश्चित रूप से काफी श्रमसाध्य है, तथा उसका प्रबंधन तो और भी कठिन है लेकिन एक बार यह आपकी दिनचर्या का हिस्सा बन जाए, इसके बाद आप एक खुशमिजाज़ शिक्षक होंगे और बच्चे भी प्रसन्न और सृजनशील होंगे। लेकिन ऐसी स्थिति तक पहुँचना थोड़ा मुश्किल और तनावमुक्त हो सकता है।

अगर आपके पास बहुत-सी तरह-तरह की गतिविधियाँ हों और आप उन्हें रोज़ करवाएँ तो आप पाएँगे कि बच्चों को पढ़ाना कितना आसान हो गया है। आप बच्चों को छोटे-छोटे समूहों में बाँटकर उनके साथ काम कर सकेंगे। हर बच्चे को समय व आपके ध्यान की ज़रूरत होती है। कुछ बच्चों को अंकों के संबंध में आपकी मदद की ज़रूरत पड़ती है तो कुछ को भाषा को लेकर आपके विशेष ध्यान की। आप इन सभी बच्चों की तभी मदद कर सकते हैं जब बाकी कक्षा अलग-अलग कामों में व्यस्त रहे।

इसे हम इस तरह समझ सकते हैं– अगर आप क्लास में एक गतिविधि आयोजित करते हैं जो दो हफ्ते बाद आपके द्वारा करवाई जाएगी, तो बच्चों के लिए वह प्रबंधन काफी मुश्किल हो जाएगा। उदाहरण के लिए अगर आप यह तय करते हैं कि आज सभी बच्चे क्ले एरिया में ही काम करेंगे तो मिट्टी के लिए सभी 30 से 40 बच्चों में धक्का-मुक्की होने लगेगी या मान लीजिए आप किसी दिन तय करते हैं कि आज बच्चे कहानियों-कविताओं की पुस्तकें पढ़ेंगे। ऐसे में अगर आपकी कक्षा की लाइब्रेरी में केवल 15 पुस्तकें हुईं तो बाकी बच्चे क्या करेंगे? किताबें पाने के चक्कर में कक्षा में इतनी अफरा-तफरी मच जाएगी कि आप 'लर्निंग क्लास रूम' के विचार को ही अलविदा कहने का मन बना लेंगे।

इसलिए अगर आपकी क्लास में 40 बच्चे हैं तो आपको चाहिए कि अधिक-से-अधिक गतिविधियाँ एक साथ करवाएँ ताकि सभी बच्चे कहीं-न-कहीं व्यस्त रहें और किसी भी गतिविधि क्षेत्र में धक्का-मुक्की वाली स्थिति निर्मित न हो। जैसे एक मोटे-मोटे हिसाब से चार बच्चे रेत से खेल सकते हैं, और क्ले एरिया में अगर सात ही बच्चे होंगे तो काफी खुश रहेंगे। पाँच से दस बच्चों को चित्रकला में व्यस्त रखा जा सकता है। चार बच्चे घर-घर खेल सकते हैं तो दो बच्चे पुराने फोन व स्टेथिस्कोप से डॉक्टर-मरीज़ के खेल में व्यस्त रह सकते हैं। दो बच्चे काटने-चिपकाने में, चार बच्चे पुस्तकों में, पाँच बच्चे बीज या आइसक्रीम की स्टिक्स इत्यादि के साथ पैटर्न या कोई आकृति बनाने में लगाए जा सकते हैं, दो बच्चे अलार्म घड़ी, इस्त्री या टूटे स्विच खोलने-जोड़ने में मशगूल रह सकते हैं, पाँच-छह बच्चे पज़ल्स में व्यस्त रखे जा सकते हैं। कहने का मतलब यह है कि विभिन्न गतिविधियों में बच्चों को व्यस्त रखने से कक्षा में अराजकता का माहौल पैदा नहीं होगा।

अगर आपकी क्लास में 30 बच्चे हैं और आप अकेली शिक्षिका हैं तो बच्चों को दो समूह में बाँटकर खेल गतिविधियों को दिन भर जारी

रखा जा सकता है। जब आप एक समूह को पढ़ाएँगी तो दूसरे समूह को खेलों में व्यस्त रखा जा सकता है। जैसे-जैसे आप बच्चों की कॉपियाँ जाँचती जाएँ, उन्हें एक-एक करके गतिविधियों की तरफ जाने दीजिए। यह बच्चों को एक साथ पढ़ाने या उन्हें एक साथ गतिविधियाँ करवाने से बेहतर रहेगा।

इन तमाम व्यवस्थाओं के साथ बच्चों का सामंजस्य बैठाने में दो से तीन सप्ताह का समय लग सकता है। लेकिन एक बार पता लगने के बाद कि उनके लिए हर खेल उपलब्ध है, उनके बीच धक्का-मुक्की कम हो जाएगी। उन्हें मालूम रहेगा कि अगर आज उन्हें मिट्टी से खेलने का मौका नहीं मिल रहा है तो कोई बात नहीं, कल या परसों उनकी बारी आएगी।

आपको इस बात पर विशेष ध्यान देना होगा कि सब चीज़ें वापस अपनी जगह पर ही रखी जाएँ। सुविधा के लिए डिब्बों पर लेबल या चित्र भी चिपकाए जा सकते हैं, पहले चार-पाँच हफ्ते काफी व्यस्त रहेंगे। उसके बाद बच्चों को आदत पड़ जाएगी और वे जिस गतिविधि में मशगूल हैं उसमें ध्यान केंद्रित करना सीख जाएँगे। बच्चे यह अनुभव करके काफी खुश रहते हैं कि वे बहुत कुछ अपने ढंग से कर पा रहे हैं। ध्यान रखिए, नियम बस इतना ही नहीं-लर्निंग सेंटर्स का रोज़ इस्तेमाल होना चाहिए।

अब अगला सवाल है कि इस गतिविधि क्षेत्र के तहत क्या-क्या शमिल हो सकता है? इस संबंध में हमने जो एक सूची विकसित की है वह इस प्रकार है-

सूची

- ब्लैकबोर्ड क्षेत्र
- पुस्तकालय क्षेत्र
- कला क्षेत्र
- विज्ञान गतिविधियाँ
- मिट्टी और रेत के खिलौने
- सामग्री को रखने के लिए शेल्फ या बॉक्स

1. क्राफ्ट, गणित और विज्ञान संबंधी सामग्री हमेशा खुले ताक में होनी चाहिए और इसका इस्तेमाल रोज़ाना होना चाहिए।
2. लाइब्रेरी की पुस्तकों का इस्तेमाल रोज़ाना होना चाहिए।
3. रेत और गीली मिट्टी रोज़ाना होना चाहिए।
4. घर से लाई जाने वाली सामग्री जैसे मोती, आइसक्रीम की स्टिक्स, धागे की रील इत्यादि के बारे में बच्चों को पहले से बताएँ और इस संबंध में उनके अभिभावकों की भी मदद लें।
5. जहाँ भी जाएँ, जिस भी दुकान पर कुछ खरीदी के लिए जाएँ, या पड़ोसियों से मिलें, ऐसी सामग्री बटोरने का हमेशा ध्यान रखें।

क्लास रूम का डिज़ाइन

अभी तक हमने कक्षा के प्रबंधन पर काफी चर्चा की, लेकिन डिज़ाइन पर कोई बात नहीं की। ऐसा इसलिए क्योंकि अगर आप सक्रिय कक्षा के प्रबंधन के दौरान छुट-पुट तनाव झेलने

के लिए तैयार हो जाएँ तो फिर ऐसी क्लास बनाने में मेहनत तो लगती है परंतु तनाव नहीं।

अधिकांश कक्षाओं में ब्लैकबोर्ड, डस्टर, चॉक और बेंच होते हैं। कुछ अगर चार्ट भी होते हैं, तो वे प्राय: गंदे, धूल भरे और दीवार पर इतनी ऊँचाई पर टंगे होते हैं कि उनका इस्तेमाल ही नहीं हो पाता। अगर किसी शिक्षिका की किस्मत अच्छी है तो उसे अलमारी या खुली शेल्फ मिल जाती है। चिकनी मिट्टी व रेत के लिए बरामदा काफी उपयोगी साबित हो सकता है। दीवारों का इस्तेमाल पेंटिग के लिए किया जा सकता है।

श्यामपट्ट के इर्द-गिर्द का इलाका

कक्षा में आपके पास एक श्यामपट्ट तो होता ही है। उसके आस-पास की जगह के इस्तेमाल की क्या संभावनाएँ हैं? किस तरह की सामग्री आप वहाँ व्यवस्थित कर सकते हैं जो सदैव आपकी पहुँच में होनी चाहिए? मेरी कोशिश होती है कि यह सब सामग्री श्यामपट्ट के आस पास मौजूद रहे:

- एक कैलेंडर
- मौसम का चार्ट
- हिंदी व अंग्रेज़ी का वर्णमाला चार्ट
- एक से दस तक के अंक वाला चार्ट
- 10, 20, 30 जैसी संख्याओं का चार्ट
- सप्ताह के दिनों वाला चार्ट
- वर्ष के महीनों वाला चार्ट
- भारत का नक्शा
- विश्व का नक्शा
- दरवाज़े पर पेंट किया गया ऊँचाई नापने वाला चार्ट

इन सभी चार्ट्स को ब्लैकबोर्ड के आस पास शिक्षक की पहुँच में ही लटकाया जा सके तो काफी अच्छा रहेगा। इससे शिक्षक को जब भी ज़रूरत पड़ेगी, वह इसका तुरंत इस्तेमाल कर सकेगा। आमतौर पर कक्षा में ज़्यादा जगह नहीं होती। ऐसे में यह ज़रूरी है कि श्यामपट्ट के पास कुछ मज़बूत कील लगाकर रखे जाएँ जिन पर चार्ट लटकाए जा सकते हैं। अगर इन्हें पूरी कक्षा में इधर-उधर लगाकर रखा जाएगा तो ज़रूरत के वक्त उनका इस्तेमाल करना काफी मुश्किल होगा। डेस्कों के बीच से जाकर चार्ट लाना और फिर उन्हें वापस अपनी जगह पर रखने में ही काफी वक्त बर्बाद हो जाएगा। दुर्भाग्य से ज़्यादातर क्लास रूम में कुछ ही चार्ट होते हैं, और वे भी वर्षों से धूल खा रहे होते हैं। अगर कोई शिक्षिका वर्णमाला, नक्शे में स्थान, महीने इत्यादि बताने के लिए इन चार्ट्स का इस्तेमाल करेंगी तो बच्चे भी संदर्भ के तौर पर उनका इस्तेमाल करना सीखेंगे।

कुछ कक्षाओं में ब्लैकबोर्ड काफी ऊँचाई पर होते हैं। अगर बोर्ड के ऊपरी हिस्से तक पहुँचने में कठिनाई आती है तो उस स्थान का इस्तेमाल कुछ अंकों या अक्षरों को लिखने में किया जा सकता है।

अगर आपकी क्लास में बड़ा-सा श्यामपट्ट है तो आप उस पर लाइनें भी पेंट करवा सकती हैं। अंग्रेज़ी शब्दों के लिए लाल व नीले रंग की दो रेखाएँ बनवाई जा सकती हैं, वैसी ही

जैसी अंग्रेज़ी लिखने की कॉपी में होती हैं। ऐसी ही रेखाएँ हिंदी शब्दों के लिए और अंको को लिखने के लिए चौकोर वर्ग बनवाए जा सकते हैं। इससे बच्चों को यह समझाना कहीं ज़्यादा आसान हो जाएगा कि कोई अक्षर या अंक कहाँ लिखा जाना चाहिए। ब्लैकबोर्ड के नीचे ही ऐसा स्थान भी होना चाहिए जिस पर डस्टर और चॉक रखे जा सकें। चार्ट, स्केल और कहानियों की पुस्तकें रखने के लिए भी यह एक अच्छा स्थान हो सकता है। जहाँ तक संभव हो शिक्षिका को सामग्री लाने के लिए कक्षा से बाहर जाने की ज़रूरत नहीं पड़नी चाहिए।

ब्लैकबोर्ड के ऊपरी हिस्से में तीन कील या हुक होने चाहिए जिन पर आप चार्ट लटका सकें। आजकल कई स्कूलों में बोर्ड के ऊपरी हिस्से में एक डोरी या तार बँधी होती है। इसका फ़ायदा यह है कि शिक्षक बच्चों से चर्चा करते समय उस डोरी पर, कपड़े सुखाने में इस्तेमाल होने वाली चिमटी से, कागज़ लटकाकर उस पर लिख सकता है। इस कागज़ को बाद में बच्चों की ऊँचाई को ध्यान में रखते हुए एक अन्य डोर से लटकाकर रखा जा सकता है।

एक अन्य बोर्ड बच्चों के लिए हो सकता है। बच्चे इसका इस्तेमाल कर सकें इसके लिए इसे अपेक्षाकृत कम ऊँचाई पर लगाना पड़ेगा। अगर यह संभव नहीं हो तो कक्षा या बरामदे की ही एक दीवार पर गेरू या पीली मिट्टी पुतवा दीजिए। इसे बच्चे बोर्ड के रूप में इस्तेमाल कर सकते हैं।

पुस्तकालय का फैलाव

स्कूल पुस्तकालय का इस्तेमाल उसके मकसद के अनुरूप नहीं किया जाता। सप्ताह के एक दिन लाइब्रेरी का पीरियड होता है। इसमें बच्चे पुस्तकालय में जाते ज़रूर हैं, लेकिन वे वहाँ या तो चुपचाप बैठे रहते हैं या फिर अनमने ढंग से किसी पत्रिका के पन्ने पलटते रहते हैं। कुछ अपने साथियों के साथ गपशप करते रहते हैं। इतनी देर में घंटी बज जाती है और सारे बच्चे उठकर चले जाते हैं। इन पुस्तकालयों के साथ एक समस्या यह होती है कि यहाँ छोटे बच्चों के लिए अच्छी कहानियों की पुस्तकों का अक्सर अभाव दिखाई देता है।

यदि आप आपके स्कूल के पुस्तकालय में लाइब्रेरियन हैं तो आपसे बच्चों को कहानियाँ सुनाने का आग्रह किया जा सकता है। अगर एक शिक्षिका के रूप में आप खुद बच्चों को पुस्तकालय में ले जाती हैं तो उन्हें कहानियाँ ज़रूर सुनाएँ। ऐसा करके आप बच्चों को किताबों की दुनिया से परिचित करवा सकती हैं, परंतु साथ ही यह ज़रूरी है कि आप अपनी कक्षा में भी एक छोटा-सा पुस्तकालय बनाकर रखें। इससे जब भी बच्चों के पास वक्त होगा, वे पुस्तक लेकर अपनी जगह पर बैठकर उसे पढ़ सकेंगे। अगर कक्षा में जगह होगी तो वे लाइब्रेरी एरिया में फर्श पर बैठकर किताबों का आनंद उठा सकते हैं।

अगर आप रोज़ किताबें पलटने व चर्चा करने का मौका दें तो बच्चे आपसे विस्तार से बातचीत करने लगेंगे। उनकी बातचीत को टेप

भी किया जा सकता है। स्कूलों में विस्तृत चर्चा करने का आमतौर पर वक्त नहीं होता है। ऐसी गतिविधियाँ कुछ हद तक इस कमी को पूरा कर सकती हैं।

बच्चे चुटकुलों, पहेलियों और कविताओं की छोटी-छोटी पुस्तकें भी खुद तैयार कर सकते हैं। आप भी बच्चों के लिए कई पुस्तकें बना सकते हैं। हाथ से तैयार की गईं ये पुस्तकें एक दीवार के किनारे या किसी एक शेल्फ पर रखी जा सकती हैं।

मिट्टी और रेत

चिकनी मिट्टी हर जगह उपलब्ध है। इसे एक बाल्टी के ऊपर गीले कपड़े पर रखा जाना चाहिए। क्ले एरिया में बच्चों के बैठने के लिए प्लास्टिक या रद्दी अखबार बिछाए जा सकते हैं। हर रोज़ इस मिट्टी के लोंदे बनाकर बीच में रख दें, ताकि बच्चे इन्हें उठाकर आकार देने की कोशिश करेंगे। साथ ही कपड़े के गीले टुकड़े भी रख दिए जाएँ।

बच्चों को खेलना बड़ा अच्छा लगता है। रेत को गीला करने के लिए एक छोटी-सी बाल्टी में पानी देना पर्याप्त होगा। सूखी रेत को छाना जा सकता है, जबकि गीली रेत से 'पर्वत', 'नदियाँ' आदि बना सकते हैं। बच्चों को कई प्रकार के बर्तन, रेत खोदने के साधन, लकड़ी के गुटके/टुकड़े, सींक, प्लास्टिक, पाइप इत्यादि दिए जा सकते हैं, ताकि उनकी रचनात्मकता को भरपूर मौका मिले।

कला

कला-शिक्षण सभी विषयों का एक अंतरंग हिस्सा होना चाहिए, लेकिन अक्सर होता यही है कि कक्षा में किसी शिक्षक को कोई बाबूगिरी का काम करना होता है तो वे बच्चों से कह देता है, 'चित्रकला की कॉपी निकालो और जो तुम्हें पसंद हो, वह ड्रॉइंग बना लो।' बच्चों को चित्रकला में तभी आनंद आएगा जब सामग्री हर समय उपलब्ध रहेगी। इस विधा में भी प्रयोग करने के लिए पर्याप्त वक्त दिया जाना चाहिए। कला खुशी या गुस्से को व्यक्त करने का एक अच्छा माध्यम है। कला के अभ्यास से बच्चे प्रकृति में उपलब्ध बहुत-सी सामग्री को ध्यान से देखना और उसका इस्तेमाल करना सीख जाते हैं। इस विधा में मस्तिष्क और कल्पनाशीलता के विकास की गज़ब की क्षमता होती है। साथ ही बच्चे अपने आस-पास के 'पैटर्न' के प्रति संवेदनशील होने लगते हैं।

भारत में कई कहानियाँ केवल बोलकर सुनाई जाती हैं। जब शिक्षिका कहानी सुनाती है तो हर बच्चे के दिमाग में अलग-अलग छवि उभरती है। ऐसे में अगर एक ही कहानी सुनाकर बच्चों से उस कहानी पर चित्र बनाने लिए कहा जाए तो उसमें विविधता देखने को मिलेगी। यह बहुत ही दुर्भाग्य की बात है कि अक्सर कक्षा में शिक्षक खुद ब्लैकबोर्ड पर तस्वीर बना देते हैं और फिर बच्चों को उसकी नकल करने को कह देते हैं। कुछ तो पाठ्यपुस्तकों से चित्रों की नकल करने के लिए कह देते हैं। इससे बच्चों को जल्दी ही एहसास हो जाता है कि उनके खुद के सृजन स्वीकार्य नहीं है।

रंगों के नाम पर अभिभावक अक्सर अपने बच्चों को क्रेयॉन लाकर दे देते हैं, लेकिन बच्चों को मोम-चॉक के अलावा भी विविध प्रकार के रंगों की ज़रूरत होती है। उनके पास अगर वॉटर कलर और पेस्टल्स भी हों तो उन्हें और मज़ा आएगा। बच्चों को खुद रंग बनाना भी सिखाया जा सकता है। ये रंग महावर, कुमकुम, गेरू, पत्तियों, फूलों, ईंट के टुकड़ों, चारकोल और यहाँ तक कि राख व मिट्टी से भी बनाए जा सकते हैं। होली के रंगों का इस्तेमाल न करें क्योंकि इनमें विषैले रसायन मौजूद होते हैं- रंगीन फर्श बनाते वक्त सीमेंट में मिलाए जाने वाले रंगों का सावधानीपूर्वक उपयोग किया जा सकता है। इसे बनाने के लिए इसके पाउडर में थोड़ा-सा गोंद या सरेस और पानी डालकर उसे अच्छी तरह से मिला लीजिए। कभी भी ब्लैक ऑक्साइड मत खरीदिए क्योंकि इसमें सीसा होता है जो एक विषैला रसायन है। आप बच्चों के लिए ब्रश कहाँ से लाएँगे? क्या वे ब्रश बना सकते हैं? कई शालाओं में चित्रकला आदि की सामग्री खरीदने के लिए बजट का प्रावधान नहीं होता। सोचिए, ऐसे में क्या किया जा सकता है?

कलाकृतियाँ बनाने के लिए सामग्री हर जगह मिल जाएगी। पेड़ों की टहनियाँ, ऊन, बीज, पुरानी पत्रिकाएँ, कपड़ों की कतरन, पत्थर, पक्षियों के पंख, गत्ता इत्यादि। गत्ते पर हर चीज़ चिपकाने की भी ज़रूरत नहीं होती। बच्चों को सिखाया जा सकता है कि कैसे एक सुई-धागे की सहायता से पक्षियों के पंखों को सिला या बाँधा जा सकता है। सिलाई भी एक मज़ेदार गतिविधि है। बच्चों को बटन टाँकना या कपड़े के किसी फटे हिस्से को सिलना सिखाया जा सकता है।

रसोईघर कहाँ ?

खाना पकाने के लिए आपको कक्षा में अलग जगह की ज़रूरत नहीं है। हर माह यह गतिविधि दो-तीन बार की जा सकती है। उदाहरण के लिए बच्चों से आलू मँगवाए जा सकते हैं, जिन्हें चूल्हा बनाकर उबाला जा सकता है। इस गतिविधि की योजना बनाने और उसके क्रियान्वयन दोनों में बच्चों की पूरी भागीदारी होनी चाहिए, ताकि उन्हें पूरी प्रक्रिया का अनुभव मिले।

फंतासी की संभावना

कई बार यह सवाल उठाया जाता है कि क्या गुड्डे-गुड़िया या रसोई-रसोई अथवा दुकानदार-ग्राहक का खेल कक्षा के लिए ठीक है? इसमें कुछ भी अनुचित नहीं है। आप बच्चों से पुराना दुपट्टा, लहंगा, साड़ी, तश्तरियाँ, फोन, पर्स और अन्य इसी प्रकार का पुराना सामान लाने को कह सकते हैं। सूती कपड़े सफाई के लिए, सिंथेटिक कपड़े का इस्तेमाल गुड़िया-कठपुलियाँ और अन्य शैक्षणिक सामान बनाने में किया जा सकता है।

बच्चों को इस प्रकार के खेल ज़रूर खेलने चाहिए। इनसे बच्चों की खेल गतिविधियों में एक प्रकार की सजीवता आती है। फैंटेसी खेल एक प्रकार का नाटक होता है जिनमें बच्चे अपनी भाषा, अनुभव व रुचियों का इस्तेमाल करते हैं। एक टीचर होने के नाते यह बेहद ज़रूरी है कि इस 'नाटक' में आप बच्चों के संवाद और क्रियान्वयन योजना बनाने को महत्त्व दें। यह पूरा नाटक कितना

अच्छा बन पाता है, इससे ज़्यादा ज़रूरी है इसकी पूरी प्रक्रिया में बच्चों की भागीदारी। प्रयोगों को प्रोत्साहित किया जाना चाहिए। वास्तविक हालातों में ही भाषा, कल्पनाशीलता और रचनात्मकता बढ़ती है। आपकी प्रमुख भूमिका सामग्री की आपूर्ति बनाए रखने और इस तरह के खेलों को प्रेरित करने की है।

खिड़कियों का इस्तेमाल व सामग्री का प्रदर्शन

अगर आपकी कक्षा में खिड़कियों में लोहे की सलाखें लगी हैं तो आप इनका इस्तेमाल बच्चों की पेंटिंग्स लटकाने के लिए कर सकते हैं। दो खिड़कियों के बीच डोरी बाँधी जा सकती है। इस डोर पर बच्चों की पेंटिंग्स लटकाई जा सकती है। यह ध्यान रखना चाहिए कि इस डोर की ऊँचाई इतनी हो कि बच्चे अपने चित्र बदल सकें। अक्सर शिक्षक बच्चों की कलाकृतियों को इतनी ऊँचाई पर लटका देते हैं कि उन्हें देखना या पढ़ना ही मुश्किल हो जाता है। कई दफा खिड़कियों में नीचे की ओर खुले ताक बने होते हैं। यदि चौड़ाई पर्याप्त हो तो इन पर बच्चों द्वारा एकत्र वस्तुओं को प्रदर्शित किया जा सकता है, खासतौर पर ऐसी चीज़ें जिन्हें बच्चे छूना पसंद करेंगे। इसकी शुरुआत आपको करनी होगी, लेकिन जल्द ही आप पाएँगे कि बच्चे भी इसमें योगदान देने लगेंगे। एक बार उनको एहसास हो कि आप उनके द्वारा लाई गई चीज़ों में रुचि ले रहे हैं और उनकी खोजों के बारे में भी जानना चाहते हैं, तो वे जल्द ही सैंकड़ों वस्तुएँ लाना शुरू कर देंगे। बच्चे इन्हें बगैर किसी भय के छू व देख सकेंगे, चाहे तो तोड़कर-खोलकर भी। इन वस्तुओं में पत्थर, बीज, कलियाँ कई प्रकार के शंख, नट, बोल्ट इत्यादि भी शामिल कर सकते हैं। आप विशेष प्रदर्शन भी कर सकते हैं, जैसे- विभिन्न प्रकार के पत्थरों, बीजों या कीलों का प्रदर्शन। बालों को सजाने वाली सामग्री का एक प्रोजेक्ट भी बच्चों को बहुत उत्साहित कर सकता है। बच्चे अपने घरों से तरह-तरह के हेयर बैंड्स, रिबन इत्यादि लाकर ढेर लगा देंगे। इसी प्रकार आप बालों में लगाने वाले विभिन्न प्रकार के तेल की खाली बोतलों का भी संग्रह करवा सकते हैं।

संग्रहकर्ता के रूप में शिक्षक

अब तक आपको एहसास हो गया होगा कि एक शिक्षिका को एक अच्छा संग्रहकर्ता भी होना चाहिए। आप अपने दम पर सभी चीज़ें एकत्र नहीं कर सकते। इसके लिए बच्चों और उनके अभिभावकों की मदद लेनी ही होगी। वस्तुओं के संग्रह के लिए आपको बच्चों को बार-बार याद दिलाना होगा। इन एकत्र वस्तुओं का इस्तेमाल भी सही ढंग से करना होगा, अन्यथा बच्चे स्कूल के लिए इन्हें एकत्र करने में कोई रुचि नहीं दिखाएँगे। 'यह स्कूल मेरा है.... ' इस तरह की भावना का कई शिक्षकों, बच्चों और उनके अभिभावकों में अक्सर अभाव देखा जाता है। सरकार कोई आदेश दे देती है और उसे टीचर द्वारा क्रियान्वित करवा लिया जाता है। ऊपर बताई गई गतिविधियों से सीखने के मकसद और सीखने की प्रक्रिया में लोकतांत्रिक भागीदारी को समझने में मदद मिलती है।

कई शिक्षक गतिविधियों में अभिभावकों को शामिल करने को सिरदर्द समझते हैं। अगर ऐसा ही है तो बेहतर होगा कि आप कोई व्यवसाय चुन लें। मैंने सदैव पाया है कि अभिभावक अत्यंत सहयोगी और मददगार होते हैं। बच्चे को स्कूल छोड़ते या उसे वापस घर ले जाते समय आप अभिभावकों को कक्षा में ले जाएँ और दिखाएँ कि संग्रहित वस्तुओं से आप उनके बच्चों को कैसे सिखाते हैं। आप देखेंगे कि आपकी मदद करने में अभिभावकों की दिलचस्पी बढ़ जाएगी और सामग्री की आपूर्ति भी। उन चीज़ों को कबाड़ीवालों को बेचा भी जा सकता है जिनका इस्तेमाल अब संभव नहीं रह गया है। इससे प्राप्त पैसे से नयी सामग्री खरीदी जा सकती है।

संग्रह के लिए ज़रूरी चीज़ें

जब आप संग्रह के लिए ज़रूरी चीज़ों को इकट्ठा करना शुरू करते हैं तब चीज़ों की कोई सूची उपलब्ध करवा पाना संभव नहीं है। आपको ज़रूरत के हिसाब से कई किस्म की सामग्री इकट्ठा करते जाना होता है– पता नहीं कब किसकी ज़रूरत हो। फिर भी देखा गया है कि कई प्रकार के डिब्बों-डिब्बियों की ज़रूरत पड़ती है। बटन और मोती रखने के लिए वैसलिन की खाली डिब्बी एवं पेंटिंग का सामान रखने के लिए मिठाइयों के डिब्बों का इस्तेमाल किया जा सकता है। इसके अलावा पुराने टिफिन बॉक्स, पुरानी तश्तरियों या कटोरे भी सामग्री रखने के काम लाए जा सकते हैं। इनमें सुई-धागा एवं क्रेयॉन आदि रखे जा सकते हैं।

बच्चे कई प्रकार की डोर या सुतलियाँ एकत्र कर सकते हैं। इनका इस्तेमाल चीज़ों को मापने, लटकाने, कठपुतलियाँ बनाने, सजाने आदि में किया जा सकता है। अगर अभिभावक थोड़ा ऊन भी भेज सकें तो उसका इस्तेमाल कोलाज या कठपुतलियों के सिर के बाल बनाने में किया जा सकता है।

फुटकर सामग्री– फुटकर सामग्री कई प्रकार की हो सकती है जो अकसर हमारे आस-पास ही आसानी से मुहैया होती है। उदाहरण के लिए मिट्टी और रेत तो हर जगह मिल जाएगी, गेरू, कोयला, डोरी, कार्डबोर्ड, अखबार, लेई धागे की खाली रील, दर्ज़ी के पास से कपड़ों की कतरन, पानवाले की दुकान से सिगरेट के खाली पैकेट, माचिस की खाली डिबिया, बीज, सिंदूर, चूड़ियाँ, पत्तियाँ, पक्षियों के पंख आदि। आप पाएँगे कि अन्य लोगों के लिए निरर्थक चीज़ें आपके कितने काम की हैं। प्लास्टिक के डिब्बों को बीच में से काटकर उन्हें रेत की खुदाई के लिए इस्तेमाल किया जा सकता है।

जूते के डिब्बे– एकत्र सामग्री रखने के लिए जूते के डिब्बे बहुत उपयोगी होते हैं। आपको कम-से-कम ऐसे 20 डिब्बों की ज़रूरत पड़ेगी जिन्हें दीवार के सहारे जमाकर रखा जा सकता है। बच्चे अखबार की पट्टियाँ काटकर उन्हें लेई से इन डिब्बों पर चिपका सकते हैं, जिससे ये डिब्बे मज़बूत हो जाएँगे। यह काम गर्मियों में किया जा सकता है, क्योंकि इस मौसम में डिब्बे जल्दी सूख जाएँगे।

इन डिब्बों में कई चीज़ों को व्यवस्थित रूप से रखा जा सकता है, जैसे गणना के लिए काम

में आने वाले इमली के चिए, सीताफल या चीकू के बीज आदि। दर्ज़ी के पास से एकत्रित कपड़ों की कतरन और धागे की खाली रील भी इनमें रखी जा सकती है। पानवाले से हासिल की गई सिगरेट की डिब्बियाँ या माचिस बॉक्स भी। एक डिब्बे में तरह-तरह के रबर के छल्ले रखे जा सकते हैं तो दूसरे में आइसक्रीम की स्टिक्स। एक अन्य डिब्बा सुई और धागा रखने के लिए भी ज़रूरी है।

आपको अपनी कक्षा में कई गतिविधियों के लिए सभी प्रकार के कागज़ की ज़रूरत पड़ेगी। इसके लिए पुरानी पत्रिकाओं का इस्तेमाल किया जा सकता है। शादी व ग्रीटिंग कार्ड्स भी इस काम के लिए अत्यंत उपयोगी होते हैं।

औज़ार- सीखने में मशगूल किसी भी कक्षा के लिए कुछ औज़ारों की सदैव ज़रूरत होती है। उम्मीद है कि इन्हें रखने के लिए आपकी क्लास में शेल्फ तो होंगे ही। इन उपकरणों में शामिल हो सकते हैं-पेपर पंचिंग मशीन, कैंची, स्टेपलर, स्केल, पेपर क्लिप, हथौड़ी इत्यादि। कपड़े सुखाने वाली चिमटी भी उपयोगी होती है।

अगर आपके पास सिल-बट्टा भी हो तो बहुत अच्छा रहेगा। वैसे भी यह बहुत ज़्यादा मँहगा नहीं होता और खाना बनाते समय बहुत काम आएगा।

गणित और विज्ञान की गतिविधियों के लिए आपको स्केल, टेप व लेंस आदि की ज़रूरत पड़ेगी। साथ ही गिनती करने के पैटर्न बनाने के लिए पत्थर, पत्तियाँ, शंख आदि भी चाहिए होंगे।

गोंद या कोई चिपकाने वाला पदार्थ कक्षा में इफ़रात में उपलब्ध रहना चाहिए। हालाँकि कई स्कूलों में अपर्याप्त स्त्रोत या इच्छाशक्ति की कमी की वजह से यह सब संभव नहीं हो पाता। ऐसे में इसके स्थान पर आटे की लेई बनाई जा सकती है। अगर मौसम ठंडा है तो इसे दो दिन तक रखा जा सकता है। विविधता लाने के लिए इसमें रंग की कुछ बूँदे मिलाकर इसमें पेंट भी कर सकते हैं। बच्चे घर से भी लेई बनाकर ला सकते हैं। दरअसल, गोंद बनाना अपने आप में एक मज़ेदार प्रोजेक्ट हो सकता है। एक स्कूल में मैंने देखा कि सब बच्चों से 25-25 ग्राम गोंद लाने के लिए कहा गया। चूँकि यह गोंद बड़े-बड़े ढेलों में होता है इसलिए सबसे पहले इसे छोटे-छोटे टुकड़ों में तोड़ना ज़रूरी है। फिर उसे दो दिन तक गुनगुने पानी में भिगोकर रख दिया जाता है। दो दिन बाद उसे अच्छी तरह से फेंटने पर बस आपकी गोंद तैयार है। इसमें से कुछ गोंद शीशियों में भरकर बच्चों को दिया जा सकता है, तो कुछ कक्षा के लिए रखा जा सकता है।

अंत में कहा जा सकता है कि थोड़े से प्रयोगों और कल्पनाशीलता से किसी भी कक्षा को जीवंत और सीखने-सिखाने की एक बेहतर जगह बनाया जा सकता है। जब अभिभावकों को एहसास होगा कि उनके बच्चे आपकी कक्षा में बहुत कुछ सीख रहे हैं, तो वे आपको अपना पूरा सहयोग देंगे। खुद बच्चों को भी महसूस होगा कि यह क्लास उनकी अपनी है। इससे वे उसे साफ-स्वच्छ और अनुशासित रखेंगे।

❑❑❑

2

पत्र कैसे लिखवाएँ

अक्षय कुमार दीक्षित*

साहित्य की एक विधा है-पत्र। प्राथमिक स्तर पर भाषा की कक्षा में बच्चों को पत्र लिखना सिखाया जाता है, लेकिन पत्र लिखना सिखाने का यह ढंग बँधे-बँधाए तरीके से होता है जिससे पत्र लिखना एक नीरस प्रकिया बनकर रह जाता है। बच्चों के अपने अनुभवों को पत्र में स्थान दिया जाए तो उन्हें पत्र लिखने में आनंद भी आएगा और वे बड़ी आसानी से पत्र लिखना सीख भी जाएँगे। पत्र लिखने की प्रकिया को रुचिकर कैसे बनाया जा सकता है। जानने के लिए पढ़ते हैं पत्र-लेख कैसे लिखवाएँ।

रश्मि जी पाँचवीं कक्षा को पढ़ाती हैं। वे बच्चों को व्यक्तिगत पत्र लिखवाना चाहती हैं। यह विषय पाठ्यक्रम में सम्मिलित है, परंतु बच्चे पत्र लिखने के इच्छुक नहीं हैं। हाँ, पत्रों के बारे में बातचीत करने में उन्हें बहुत आनंद आता है।

रश्मि जी एक दिन कक्षा में पुराने पत्र, कुछ पोस्टकार्ड, लिफाफे आदि ले गईं। उन्होंने बच्चों को वे पत्र दिखाए और बातचीत प्रारंभ कर दी। उन्होंने बच्चों से पूछा, ''आपमें से किस-किसके घर में कभी कोई पत्र आया है? या किस-किसने ऐसे पत्र देखे हैं?''

कुछ बच्चों ने बताया कि उनके घर एक बार ऐसा पत्र आया था या उनके पिताजी ने गाँव में पत्र लिखा था। रश्मि जी जानती हैं कि बच्चों के घरों में बहुत अधिक पत्र नहीं आते होंगे और न ही उनके घर कोई पत्र लिखता होगा। बधाई कार्ड तो फिर भी कभी-कभार घरों में मिल जाते हैं। कभी-कभी औपचारिक पत्र भी आ जाते हैं, परंतु व्यक्तिगत पत्र लिखने या पढ़ने की केवल कल्पना ही की जा सकती है। रश्मि जी सोच रही थीं कि कैसे बच्चों को एहसास करवाया जाए कि पत्र लिखना ज़रूरी है। क्या यह कहा जाए कि पत्र लिखना सीखने से परीक्षा में अच्छे अंक आ जाएँगे? क्या यह कहूँ कि पत्र लिखने से मनोरंजन होगा? या कहूँ कि खाली समय में पत्र लिखकर समय व्यतीत किया जा सकता है?

अनुभव बाँटना– रश्मि जी ने बच्चों को अपने अनुभव बताए कि जब उनको पत्र मिला तो उसे पढ़कर उन्हें कितनी प्रसन्नता हुई। उन्होंने यह भी

* *शिक्षक*, नगर निगम प्राथमिक विद्यालय, राजपुर, नयी दिल्ली

बताया कि जब उन्होंने पहली बार पत्र लिखा तो क्या-क्या दिक्कतें आईं या उन्हें कैसे अनुभव हुए, जैसे- पत्र कहाँ से लाईं, कितने का आया, किसने पैसे दिए, ये सब छोटी-छोटी बातें रश्मि जी याद कर वास्तविकता बता रही थीं। इसके बाद उन्होंने थोड़ा विस्तार से बताया कि उन्होंने पत्र लिखते समय किन-किन बातों का ध्यान रखा। बाद में उन्होंने पत्रों में बच्चों की रुचि जागृत करने के लिए एक गतिविधि करवाई।

गतिविधि-रश्मि जी ने बच्चों के सामने कुछ सवाल रखे और बच्चों से उनके उत्तर सोचने के लिए कहा–

1. जिसे पत्र लिख रहे हैं, उसका पता कागज़ के दाएँ कोने पर क्यों लिखा जाता है?
2. कंप्यूटर में तो सब कुछ बाईं तरफ से शुरू होता है। कुछ लोग बाएँ हाथ से लिखते हैं। क्या बाईं तरफ लिखा जा सकता है?
3. पत्र को एक विशेष रूप में ही क्यों लिखा जाना जरूरी है?
4. क्या पत्र में भेजने वाले का पूरा पता होना ज़रूरी है?
5. पते में पिन कोड लिखने से क्या फ़ायदा होता है?
6. डाकिया पत्र को सही जगह कैसे पहुँचा पाता है? क्या उसे हर इंसान का पता याद होगा?

बच्चों ने इन प्रश्नों पर चर्चा करके कक्षा में सबको बताया। रश्मि जी ने जहाँ ज़रूरत समझी, वहाँ उनके उत्तरों में अपनी बात जोड़ दी। अब उन्हें यह लगने लगा था कि बच्चों के मन में पत्रों के प्रति उत्सुकता जाग चुकी है।

समूह कार्य

अब रश्मि जी ने कक्षा के बच्चों को कुछ समूहों में बाँट दिया। प्रत्येक समूह को उन्होंने कुछ व्यक्तिगत पत्र दे दिए। ये पत्र उन्होंने पिछली कक्षा में बच्चों से लिखवाए थे। कुछ पत्र अन्य कक्षाओं से भी प्राप्त हो गए थे। रश्मि जी ने प्रत्येक समूह को 5-5 पत्र दिए। बच्चों से उन्होंने कहा, " ये पत्र आप जैसे बच्चों ने लिखे हैं। आप प्रत्येक पत्र को पढ़कर समूह में चर्चा करें और बताएँ कि कौन-सा पत्र इन पत्रों में सबसे अच्छा है और क्यों?"

इस गतिविधि को कराने के पीछे रश्मि जी का उद्देश्य था कि बच्चे प्रत्येक पत्र को पढ़ेंगे और उनकी कमियों और अच्छाइयों पर ध्यान देंगे। रश्मि जी ने अपनी ओर से नहीं कहा कि वे पत्रों की कमियों या खूबियों की सूची बनाएँ। बच्चे यह कार्य अप्रत्यक्ष रूप से करेंगे।

दस मिनट बाद रश्मि जी ने प्रत्येक समूह में से एक बच्चे को सबके सामने आकर अपने समूह के निष्कर्ष बताने के लिए कहा। प्रत्येक समूह से एक बच्चे ने आकर अपने समूह द्वारा चुना गया सर्वश्रेष्ठ पत्र दिखाया और उसके बारे में बताया। कक्षा के अन्य बच्चों ने और रश्मि जी ने पत्र के बारे में कुछ सवाल पूछे जिनसे यह साबित करने में मदद मिली कि वास्तव में वही पत्र सर्वश्रेष्ठ था। उदाहरण के लिए - क्या इस पत्र में पूरा पता लिखा है? क्या डाकिया इस पत्र को सरलता से पहुँचा सकता है? क्या इसमें भेजने वाले ने अपना नाम, शहर का नाम, तिथि आदि लिखी है? आदि।

यह सब काम कराने का लाभ था कि बच्चे समझ सकेंगे कि व्यक्तिगत पत्रों के लेखन में किस प्रकार की भाषा का प्रयोग किया जाता है और पत्रों की गुणवत्ता का आकलन किन कसौटियों के आधार पर किया जा सकता है। रश्मि जी ने पत्रों के विषय पर भी चर्चा की – पत्र लेखक ने पत्र में कौन–कौन सी बातें बताई हैं? कौन–कौन सी बातें बताई जा सकती थीं? आदि। कुछ कसौटियाँ निम्नलिखित हो सकती हैं–

1. विचारों की स्पष्टता
2. कृतज्ञता, धन्यवाद आदि शिष्टाचार का पालन
3. शब्दों, वाक्यांशों की संख्या
4. भाषा का समुचित उपयोग
5. पूरा पता, पिन कोड सहित
6. तिथि

इसके बाद रश्मि जी ने बच्चों को अपनी पसंद के व्यक्ति को पत्र लिखने के लिए प्रेरित करने का निश्चय किया। किसी को पत्र लिखने के लिए उसके साथ भावात्मक संबंध होना ज़रूरी है। यह संबंध माता–पिता, रिश्तेदारों, मित्रों आदि के साथ हो सकता है। यह संबंध किसी पालतू पशु, खिलौनों, गुड़िया, पेड़, चंद्रमा, तारे, परी या भगवान से भी हो सकता है। इसलिए रश्मि जी ने निश्चय किया कि वे प्रारंभ में उन्हीं व्यक्तियों/वस्तुओं को संबोधित करते हुए पत्र लिखवाएँगी, जिनसे बच्चों के भावनात्मक संबंध हैं।

रश्मि जी ने बच्चों को बताया कि इन्हीं कसौटियों को ध्यान में रखते हुए एक पत्र लिखना है। उन्होंने बच्चों की सहमति से इस कार्य के लिए समय का निर्धारण कर लिया। यह भी बताया कि सब मिलकर सबसे अच्छे बीस पत्र चुनकर उनको प्रदर्शन बोर्ड पर लगाएँगे।

कृतज्ञता पत्र

पत्र का एक अन्य प्रकार समझाने के लिए रश्मि जी ने निश्चय किया कि अगले महीने वे बच्चों से कृतज्ञता पत्र लिखवाएँगी। उन्होंने बच्चों को समूहों में बाँट दिया और कहा, ''ऐसी वस्तुओं की सूची बनाइए जो रोटी, कपड़ा और मकान के अलावा आपको ज़रूरी लगती हैं। यह भी बताइए कि ये कहाँ से मिलती हैं?''

रश्मि जी जानती थीं कि इस कार्य में बच्चों को उनकी सहायता की ज़रूरत पड़ेगी क्योंकि बच्चों को इस प्रकार की समस्या का पहले सामना नहीं करना पड़ा है तथा उनमें हिचकिचाहट भी है। हो सकता है कि कुछ बच्चों को पिछली कक्षाओं में एक ही सही उत्तर लिखने या सोचने की आदत पड़ चुकी हो। इसलिए रश्मि जी प्रत्येक समूह में जाकर देखने लगीं कि वे क्या लिख रहे हैं या क्या सोच रहे हैं। उनके प्रोत्साहन और प्रशंसा से बच्चे सही दिशा में सोचने लगे। रश्मि जी ने कुछ समूहों से कुछ प्रश्न पूछें, ताकि वे सही दिशा का पता लगा सकें जैसे–

1. आकाश से क्या मिलता है?
2. माता–पिता से क्या मिलता है जो किसी और से नहीं मिलता?
3. क्या चीज़ पैसे से खरीदी नहीं जा सकती?
4. तुम्हारी पसंद का खाना कौन बनाता है?
5. दोस्त अच्छे क्यों लगते हैं?

इस गतिविधि के बाद उन्होंने प्रत्येक समूह में से एक प्रतिनिधि को बुलाया और अपने समूह की सूची सुनाने को कहा। सभी समूहों की प्रस्तुति के बाद वे सूचियाँ प्रदर्शन पर लगा दी गईं।

इसके बाद रश्मि जी ने कहा, ''हमारे जीवन में इतनी चीज़ें हैं जो हमें दूसरों से मिलती हैं। हम भी दूसरों को बहुत कुछ देते हैं पर क्या कभी हमने उनके कार्यों के लिए उनकी तारीफ़ की? कभी धन्यवाद कहा? क्या हमें किसी ने कभी धन्यवाद कहा या तारीफ़ की?''

रश्मि जी की बात सुनने के बाद बच्चे उन्हें चुपचाप टुकुर-टुकुर देखने लगे। कक्षा के एक कोने से जवाब आया कि, 'हाँ, मैंने इसे कहा था।'

कुछ पलों के बाद रश्मि जी ने कहा, ''आज हम किसी एक व्यक्ति को पत्र लिखकर बताएँगे कि वह हमें कितना अच्छा लगता है और उसे उन सब कामों के लिए धन्यवाद कहेंगे जो वह हमारे लिए करता है। वह व्यक्ति कोई भी हो सकता है। तुम्हारे माता-पिता, रिश्तेदार, मित्र या कोई पशु-पक्षी, पेड़-पौधा कोई भी।''

यह सब सुनने के बाद बच्चे बड़े उत्साह से पत्र लिखने लगे। जब रश्मि जी ने पत्र पढ़े तो वे प्रसन्नता से भर गई क्योंकि कई बच्चों ने पत्र उनके नाम लिखे थे।

पत्र लेखन का इतिहास उतना ही पुराना है जितनी पुरानी मानव सभ्यता है। इसके बावजूद हमारी शिक्षण व्यवस्था में पत्र लेखन के नाम पर दो-चार घिसे-घिसाए पत्र बँधे-बँधाए ढर्रे से लिखवा दिए जाते हैं, जैसे- बीमारी के कारण अवकाश, जन्मदिन पर बधाई, उपहार का धन्यवाद, स्थानांतरण का प्रमाणपत्र आदि। यकीनन आपने भी अपने विद्यार्थी जीवन में इन्हीं पत्रों को लिखा होगा।

अब घरेलू पत्रों की बात करें। हालाँकि अब घरों में भी पत्र कम ही आते हैं, लिखने का समय किसके पास है भला। समय की कमी से भी ज़्यादा कमी है-अपनेपन की।

जब कोई हमें पत्र लिखता है तो उस पत्र को हाथ में पकड़ने मात्र से जो सुख मिलता है, वह किसी फोन-ईमेल आदि से नहीं मिल सकता। और जब आप उस को पढ़ते हैं, तब बिना किसी फोन के ही आप पत्र लेखक से बातें करने लगते हैं। दुर्भाग्य से इस आनंद को प्राप्त करने के अवसर अब दुर्लभ होते जा रहे हैं, क्योंकि पत्र लेखन को इतना कृत्रिम और रस्मी कार्य बना दिया गया है।

क्या 'अत्र कुशलम तत्रस्तु' या 'सविनय निवेदन यह है कि' के बिना पत्र नहीं लिखे जा सकते? जब किसी घटना को भी बेड़ियों में जकड़ दिया जाता है, तो उसमें स्वाभाविकता का अभाव अपने आप हो जाता है।

समाज में पत्र-लेखन की परंपरा को बनाए रखना हमारे ही हाथ में है। एक व्यक्ति के रूप में भी और एक शिक्षक के रूप में भी। हम जब किसी को पत्र लिखेंगे तो संभवतः वह भी पत्र लिखने के लिए प्रेरित होगा। एक शिक्षक के रूप में तो हम और भी बहुत कुछ कर सकते हैं। कुछ सुझाव आगे दिए गए हैं-

1. परंपरागत कृत्रिम विषयों के बजाए ऐसे विषय चुनें जिनपर पत्र लिखने के लिए बच्चे उत्सुक हो जाएँ।
2. बच्चों को आज़ादी दें। उनसे पूछें कि वे किसे पत्र लिखना चाहते हैं और किस बारे में लिखना चाहते हैं।
3. बँधे-बँधाए जुमलों का इस्तेमाल करने की प्रेरणा न दें। बच्चों को बताएँ कि पत्र उसी तरह लिखना चाहिए जिस तरह हम अपने किसी प्रिय व्यक्ति से बातें करते हैं। शब्दाडंबर की पत्र-लेखन में कोई जगह नहीं है।
4. परीक्षा में भी परंपरागत विषय न देकर बच्चों के जीवन से जुड़े विषय दें।
5. यदि संभव हो तो बच्चों को पत्र लिखिए। उन्हें डाक द्वारा बच्चों के घर तक पहुँचा दीजिए। या स्कूल में ही एक बच्चे को 'डाकिया' बनाकर बच्चों को पत्र प्राप्त करने दें। 'पत्र पाने' की खुशी जब बच्चों को मिलेगी, तब वे भी पत्र लिखने को प्रेरित होंगे।
6. बच्चों को कहिए कि वे छुट्टियों में आपको पत्र लिखें। पत्र आपके घर या स्कूल के पते पर भेजें। इससे आपका और बच्चों का भावात्मक संबंध और मज़बूत बनेगा। जब आप वे पत्र बच्चों को दिखाएँगे, तब डाक प्रणाली पर बच्चों का विश्वास और मज़बूत होगा और वे समझ जाएँगे कि डाक-पेटी में डाला गया पत्र वास्तव में गंतव्य तक पहुँच जाता है।
7. 'बीमारी के कारण अवकाश' जैसे विषय केवल तब ही न्यायपूर्ण समझे जा सकते हैं जब आपके विद्यालय में बच्चे के लिखे पत्र द्वारा अवकाश स्वीकृत किया जाता हो। यदि आपके विद्यालय में बच्चों को छुट्टी लेने के लिए अभिभावक से पत्र लिखकर लाना पड़ता है और परीक्षा में आप विद्यार्थी की ओर से पत्र लिखवा रहे हैं तो यह तर्कपूर्ण नहीं कहा जा सकता है।

❑❑❑

3

कह दो एक कहानी

लता पाण्डे*

कहानी सुनना लगभग हर बच्चे को अच्छा लगता है क्योंकि कहानी सुनने के दौरान उसे आनंद मिलता है। कहानी सुनने से उसमें अनेक क्षमताएँ भी विकसित होती हैं। इसलिए कहानी को स्कूली दिनचर्या का एक अभिन्न अंग बनाना हितकर है। बच्चे को कहानी कितनी सरस लगती है, वह कितने ध्यान और धैर्य के साथ सुनता है-यह काफ़ी हद तक इस बात पर निर्भर करता है कि टीचर ने कहानी कैसे सुनायी। इसलिए प्रत्येक शिक्षक के लिए कहानी सुनाने से जुड़ी कई बातों को जानना ज़रूरी है, जैसे-कहानी क्या है? कहानी सुनाने से क्या फायदे हैं? कहानी कैसे सुनायी जाए। इन्हीं सब बातों को उजागर कर रहा है यह लेख-कह दो एक कहानी।

नन्हे बच्चों की दुनिया बड़ी ही निराली होती है। इस अनूठी दुनिया में कहीं खेल हैं, तो कहीं झूले हैं। कहीं दादा-दादी, नाना-नानी का लाड़-दुलार है तो कहीं माता-पिता का प्यार। कहीं रूठना है तो कहीं मचलना है। अपने नन्हे बच्चे को मनाने के लिए माँ क्या कुछ नहीं करती? कभी चंदा मामा दिखाती है, तो कभी मीठी लोरी सुनाती है। लोरी की मीठी धुन में खोकर बच्चा मीठी नींद में सो जाता है। बच्चा थोड़ा बड़ा होता है तो लोरी से उसका नाता छूटने लगता है और धीरे-धीरे कहानी उसके जीवन में कदम रखने लगती है। नन्हे-मुन्नों को खेलना-कूदना जितना अच्छा लगता है, उतना ही अच्छा उन्हें कहानी सुनना भी लगता है। एक बार कहानी सुनने का चस्का लग जाए तो बच्चे घर के बड़ों से कहानी सुनाने की ज़िद करने लगते हैं। कहानी बच्चों को आनंदित करती है। कहानी सुनते समय बच्चे कल्पना-लोक की सैर करते है। जिस कल्पना-लोक में आइसक्रीम के पहाड़ हैं, चॉकलेट की नदियाँ हैं, पेड़ों की डालियों में टॉफियाँ लटकी हैं। कहानी के नन्हे पात्रों में बच्चे अपनी ही झलक पाते हैं। यही कारण है कि उनका मन बार-बार कहानी सुनने को करता है।

कहानी की परंपरा

कहानी कहने-सुनने की परंपरा बहुत लंबे समय से चली आ रही है। यह परंपरा विकसित तथा

* *एसोसिएट प्रोफ़ेसर*, प्रारंभिक शिक्षा विभाग, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, श्री अरविंद मार्ग, नयी दिल्ली- 110016

अविकसित दोनों ही तरह के समाजो में चली आ रही है। शायद ही कोई देश होगा, जहाँ कथा साहित्य न हो और जहाँ आनंद प्राप्ति के लिए कहानियाँ न कही जाती हों, न पढ़ी जाती हों। हर शाम खाना खा लेने के पश्चात् बालकों के झुंड कहानी सुनाने के लिए घर के बड़े-बूढ़ों को घेर लेते हैं- यह परंपरा धरती पर विकसित समाजों में भी देखने में आती है और अविकसित अथवा जंगली लोगों में भी। देश-परदेश में घूमने वाले मुसाफ़िर किसी रात किसी धर्मशाला में रुकते हैं तो अन्य देशों के मुसाफ़िरों के साथ बैठकर नयी-नयी कहानियाँ कहते-सुनते हैं और दिन भर की थकान उतारते हैं। युद्ध के ज़ख्मों को वीरता से झेल लेने वाले सिपाही दवा की शीशियों से भी अधिक महत्त्व कहानियाँ सुनाने वाली नर्स को देते हैं। जेल में बंदी कैदियों को भी अगर मौका मिल जाता है तो वे कहानियाँ कहने का प्रसंग ज़रूर ढूँढ़ लेते हैं। लंबी समुद्री यात्राओं में कहानियाँ ही रात के समय एकमात्र विनोद का माध्यम बनती हैं। राजा और रानी तो हमेशा सोने से पहले कही जाने वाली कहानियों अथवा लोककथाओं में हमसे बार-बार बात करते हैं। कहानी की यही तो खासियत है कि इसमें सभी आनंद लेते हैं।

काका कालेलकर ने थोड़े-से शब्दों में कहानी की महिमा का सुंदरता से यों वर्णन किया है - ''उत्तरी ध्रुव से लेकर दक्षिणी ध्रुव तक के सभी देशों में, विशाल जनपदों अथवा नन्हें टापुओं में, विकसित लोगों अथवा जंगली निवासियों में, बूढ़ों और बच्चों में, गृहस्थियों अथवा संन्यासियों में यदि कोई सर्वसामान्य व्यसन देखा जा सकता है तो वह है कहानी का व्यसन। संसार में शायद ही कोई गाँव होगा जहाँ शाम पड़ी हो और कहानियाँ न चलती हों। जहाँ-जहाँ व्यापार के पुराने अड्डे थे, वहाँ-वहाँ दूर देशांतरों के व्यापारी सरायों में इकट्ठे होते थे और फिर चातुरी, ठगबाजी, आशिक-माशूक, कुत्ते-बिल्ली, राजा-रानी, साधु-संतों, दैवी-क्षोभ अथवा दैवी-चमत्कारों, तंत्र-मंत्र या जादू-टोनों की कहानियाँ ही चलती थीं।''

इस प्रकार कहानी सभी को आनंदित करती है। कहानी केवल आनंद ही नहीं देती, कहानी सुनने से अन्य भी कई लाभ हैं -

- **आनंद मिलता है** - बच्चे कहानी सुनना इसलिए पसंद करते हैं क्योंकि कहानी सुनने में उन्हें आनंद मिलता है। अन्य कलाओं की तरह कहानी भी एक कला है। जिस प्रकार कोई भी कला अपने संपर्क में आने वाले व्यक्ति को आनंदित करती है, उसी प्रकार कहानी भी सुनने वाले को आनंद रस से सराबोर कर देती है। संगीत ध्वनि-प्रधान कला है, चित्र रूप-प्रधान कला है, साहित्य काव्य-प्रधान कला है, कहानी रस का भंडार है। कहानी के कथानक के उतार-चढ़ाव में कभी बच्चों को हँसी आती है तो कभी किसी पात्र का विलाप नन्हे बच्चों की आँखों में पानी भर लाता है। रस की उत्पत्ति कहानी सुनाने वाले और सुनने वाले के आपसी तालमेल से होती है जो कहानी सुनने-सुनाने के दौरान होता है।

- **सुनने की क्षमता का विकास होता है**– कहानी सुनते समय बच्चे कहानी में इतना रम जाते हैं कि उन्हें अपने आस-पास की दुनिया की खबर ही नहीं रहती। बच्चे बहुत ध्यान से और धैर्यपूर्वक कहानी सुनते हैं। श्रवण-कौशल के विकास के लिए इसी प्रकार ध्यान और धैर्य के साथ सुनना अत्यंत आवश्यक है। इस प्रकार कहानी सुनना बच्चे में सुनने की क्षमता के विकास में सहायक है।
- **बच्चे अनुमान लगाना सीखते हैं** – अकसर कहानी सुनाने की ज़िद करते समय बच्चे कहते हैं-'कल जो बिल्ली की कहानी सुनाई थी, वही सुनाओ' या 'काले जादूगर की कहानी सुनाओ' यानि कि पहले दिन सुनी हुई कहानी बच्चे फिर से दोबारा सुनना चाहते हैं। सुनी हुई कहानी को सुनने में भी उन्हें बहुत आनंद आता है। इसका कारण यह है कि सुनी हुई कहानी को दोबारा सुनते समय वे साथ-साथ यह भी अनुमान लगाते चलते हैं कि अब आगे क्या होगा? जब कहानी सुनते-सुनते लगाया गया अनुमान भी सही साबित होता चलता है तो बच्चे की खुशी का पारावार नहीं रहता। वह आत्मविश्वास से भर उठता है कि – हाँ, मेरा लगाया गया अंदाज़ा बिल्कुल सही निकला। बच्चे का अपने अनुमान लगाने की क्षमता में विश्वास भी बढ़ जाता है और यही विश्वास जब वह पढ़ना सीखने की शुरुआत करता है, तब उसके बहुत काम आता है। अनुमान लगाते हुए पढ़ना उसके लिए पढ़ना सीखने की प्रक्रिया को सरल बना देता है। छोटी उम्र के बच्चों के लिए इस क्षमता का विकास बहुत ज़रूरी है।
- **बच्चे स्वयं कहानी चुन सकते हैं** – पढ़ने की अपेक्षा कहानी सुनते समय बच्चे के पास स्वतंत्रता होती है कि वह सुनाने वाले से अपनी पसंद की कहानी सुनाने की फरमाइश करें क्योंकि कहानी सुनाने वाला और श्रोता दोनों आमने-सामने होते हैं।
- **आत्मीय संबंध स्थापित होता है** – नन्हे बच्चों को कहानी परिवार का कोई न कोई निकटतम संबंधी सुनाता है। बच्चा अनौपचारिक वातावरण में कहानी सुनता है। कहानी की भाषा भी बच्चे की अपनी भाषा होती है। इस प्रकार बच्चा बहुत ही सहजता से कहानी सुनता है। कहानी सुनाने वाले से बच्चे का संबंध होने के कारण सुनी गई कहानी पर बच्चा आसानी से विश्वास कर लेता है। कहानी सुनते-सुनते बच्चे का कहानी सुनाने वाले से एक आत्मीय रिश्ता बन जाता है। फिर कहानी सुनाने वाला चाहे शिक्षक हो या परिवार का कोई सदस्य।
- **दो कला-विधाओं का समन्वय रहता है**– कहानी सुनते समय बच्चा कहानी के कथानक से रू-ब-रू होने के साथ

कथावाचक के स्वर के उतार-चढ़ाव का भी आनंद लेता है। इस प्रकार सुनी हुई कहानी में दो कला-विधाओं का समन्वय रहता है-पहला साहित्य और दूसरा नाद एवं स्वर।

- **कल्पनाशक्ति का विकास होता है**- कहानी सुनने की विशेषता यह है कि कहानी बच्चों को कल्पना लोक की सैर पर ले जाती है। कल्पना यथार्थ का विस्तार है। प्रत्येक कल्पना वास्तविकता के मूल में निहित रहती है। कल्पनाशक्ति के विकास में कहानी बहुत बड़ी भूमिका निभाती है। कहानी में कभी नितांत कल्पित घटनाएँ होती हैं, तो कभी वास्तविक जीवन की घटनाओं को कल्पना के ताने-बाने में पिरोकर कहानी बुन दी जाती है। यही कहानी में निहित कल्पना-तत्व है। इस प्रकार कहानी स्वयं कल्पना का प्रतिफल होती है। कहानी का विन्यास कल्पना का ही परिणाम है, भले ही वह वास्तविकता से युक्त हो।
- **भाषायी विकास में सहायक है** - कहानी सुनाने के दौरान बच्चा कहानी में आए शब्दों, वाक्य प्रयोगों और तुकबंदियों को अत्यंत सरलता और सहजतापूर्वक सीख लेता है। ये सब उसकी शब्दावली में कब आ जाते हैं उसे स्वयं ही पता नहीं चलता। इतना ही नहीं बच्चे कई बार कहानी सुनते-सुनते कहानी गढ़ना भी सीख जाते हैं।
- **स्मरण-शक्ति का विकास होता है** - जिस प्रकार कहानी सुनने से बच्चे की कल्पना-शक्ति का भी विकास होता है, उसी प्रकार उसकी स्मरण-शक्ति का भी विकास होता है। बच्चा सुनी हुई कहानी को अपने साथियों/परिवार वालों को सुनाना चाहता है। सुनी हुई कहानी को दोबारा सुनते समय वह अनुमान लगाने की कोशिश करता है कि आगे क्या होगा? इस प्रकार कहानी को याद रखने की कोशिश उसकी स्मरण-शक्ति को बल देती है। जब बच्चा कहानी को याद रखने का प्रयास करता है तो एक वस्तु से जुड़ी दूसरी वस्तु, एक पात्र के साथ जुड़ा दूसरा पात्र, एक घटना से जुड़ी दूसरी घटना सबको मिलाता हुआ चलता है। विचार संचालित करने की शक्ति स्मरण-शक्ति के विकास में सहायक होती है। कहानी की बनावट ही ऐसी होती है कि उसमें विचार संकलन अत्यंत सरल और सहज होता है। संबद्ध और यथार्थ बातें सुनने से स्मरण-शक्ति बढ़ती है। कहानी में संबद्धता और यथार्थता दोनों ही विद्यमान रहते हैं।
- **स्वयं कहानी बनाने/कहने की कला आती है** - कहानी सुनते-सुनते बच्चे स्वयं भी बातों को किस प्रकार क्रम से रखा जाता है, किस प्रकार कहा जाता है, यह सीख जाते हैं। कई बार बच्चे अपने अनुभव के आधार पर बातों में कल्पना

का पुट देकर मनगढ़ंत किस्से सुनाते हैं। इन्हीं किस्सों को रोचक बनाकर कहानी का रूप देने की कला कहानी सुनने से विकसित होती है।

उपरोक्त बातों से यह स्पष्ट है कि कहानी आनंद देने के साथ बच्चे के लिए कई अन्य प्रकार से भी उपयोगी है। इसलिए कहानी को विद्यालयी शिक्षा में भी समुचित स्थान देना है। विशेष रूप से शिशु शिक्षा का तो कहानी महत्वपूर्ण अंग होना चाहिए।

शिशु शिक्षा और कहानी

नन्हे बच्चों को स्कूल में रोज़ एक कहानी सुनने को मिले तो सबसे बड़ा लाभ यह होगा कि शिक्षिका से उनका स्नेहिल नाता बनेगा। वे बिना किसी संकोच के उनसे अपनी बात कह सकेंगे। बच्चों का भाषायी विकास होगा साथ ही कहानी के माध्यम से खेल ही खेल में वे भाषा के साथ गणित भी सीख लेंगे।

कैसे कहें कहानी

कहानी सुनाना भी एक कला है। कितनी ही अच्छी कहानी क्यों न हो यदि रोचक ढंग से न सुनायी जाए तो कहानी अपना दम तोड़ देती है। कहानी सुनाते समय कुछ बातों का ध्यान रखना ज़रूरी है –

- कहानी ऐसी चुनें जो रोचक हो जिसकी भाषा बच्चों की अपनी भाषा हो।
- बच्चों को गोल घेरे में बैठाएँ ताकि कहानी सुनते समय हर बच्चा टीचर को देख सके। कहानी सुनाने वाले के चेहरे पर आने वाले उतार-चढ़ाव कहानी का रस लेने में सहायक होते हैं।
- कहानी सुनाते समय स्वर में माधुर्य और आत्मीयता हो। कहानी कहने में गति, स्वर और अधिगम तीनों तत्वों को शामिल करें। हाव-भाव तथा स्वर के उतार-चढ़ाव से कही गई कहानी का असर बहुत गहरा पड़ता है।
- कहानी सुनाते समय कहानी में आए पात्रों के मुखौटे बनाकर बच्चों को पहना दिए जाएँ, तो उनमें कहानी सुनने का आनंद दोगुना हो जाता है।
- बच्चों को तुकबंदी, निरर्थक शब्दों का जोड़-तोड़ बहुत भाता है। कहानी में यदि छोटे-छोटे गीतों को पिरो दें तो कहानी बच्चों के लिए सरस बन जाती है।
- कहानी सुनाने के बाद कभी भी यह न पूछें-इस कहानी से क्या सीख मिली? सीखने-सिखाने पर चर्चा शुरू करते ही कहानी सुनने का सारा मज़ा किरकिरा हो जाता है।

इन कुछ बातों को दृष्टिगत रखते हुए बच्चों को कहानी सुनायी जाए तो हर बच्चा रोज़ विद्यालय आना चाहेगा। इतना ही नहीं, विद्यालय आने के बाद कहानी सुनने के लिए आतुर बच्चा कह उठेगा-कह दो एक कहानी।

संदर्भ ग्रंथ

बधेका, गिजुभाई, 2000 *कथा-कहानी संस्करण*, संस्कृति साहित्य, शाहदरा, दिल्ली

कुमार कृष्ण, 1996, बच्चे की *भाषा और अध्यापक*, नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया, नयी दिल्ली

❑❑❑

विद्यया ऽमृतमश्नुते

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद

NATIONAL COUNCIL OF EDUCATIONAL RESEARCH AND TRAININ

श्री अरविंद मार्ग, नई दिल्ली – 110 016

(शैक्षिक अनुसंधान प्रभाग)

एन सी ई आर टी
NCERT

एन.सी.ई.आर.टी. सीनियर रिसर्च एसोसिएटशिप (पूल ऑफिसर) स्कीम

विद्यालय शिक्षा एवं संबंधित विषयों में एन.सी.ई.आर.टी. सीनियर रिसर्च एसोसिएट के पद के लिए भर्ती हेतु आवेदन आमंत्रित किये जाते हैं। पात्रता की योग्यता संबंधित जानकारी हेतु एन.सी.ई.आर.टी. की वेबसाईट www.ncert.nic.in पर देखें। पूर्ण आवेदन अध्यक्ष, शैक्षिक अनुसंधान प्रभाग, एन.सी.ई.आर.टी., नई दिल्ली - 110 016 को भेजे जा सकते हैं। आवेदनों पर वर्ष में दो बार विचार किया जाएगा (31 मई तथा 30 नवंबर अंतिम तिथियाँ होंगी)।

4

भाषा शिक्षण

राधा *

भाषा अभिव्यक्ति एवं विचारों को व्यक्त करने का एक सरल एवं सशक्त माध्यम है। भाषा से हम अपने विचारों को न केवल दूसरों तक पहुँचा पाते हैं बल्कि दुनिया से भी रू-ब-रू होते हैं। हमारे जीवन में भाषा का अपना एक महत्वपूर्ण स्थान है। बच्चा भाषा सीखने की शुरुआत अपने घर-आँगन से करता है, लेकिन भाषा विकास में शिक्षक की अहम भूमिका होती है। बच्चे के लिए भाषा सीखने की प्रक्रिया को कैसे रुचिकर बनाया जाए, जानने के लिए पढ़िए यह लेख....

शिक्षण की किसी भी प्रक्रिया को प्रारंभ करते हुए सबसे पहले जिस साधन (माध्यम) का प्रयोग किया जाता है वह है-भाषा। कोई भी ऐसी शिक्षण-प्रशिक्षण या ज्ञान की प्रक्रिया उपलब्ध नहीं है, जहाँ भाषा के बिना संप्रेषण संभव हो। बच्चों को सहजता से भाषा सिखाना निश्चित ही चुनौतीपूर्ण कार्य है। विद्यालय में पहला कदम रखने से पहले ही बच्चे भाषा की अद्भुत क्षमताओं से परिचित होते हैं। बस, ज़रूरत है शिक्षक द्वारा उन अद्भुत क्षमताओं को पहचानने की, जिससे वे उनकी नन्हीं-नन्हीं परिकल्पनाओं, उनकी जिज्ञासाओं, उनकी कल्पनाओं की ऊँची उड़ान, स्वतंत्र और उन्मुक्त भाव से खोज करने की चाह को पूरा करने में सहायक हो सकें। यदि भाषा शिक्षण के आरंभ में शिक्षक योजनाबद्ध तरीके से शिक्षण प्रक्रिया शुरू करें तो बच्चे के लिए भाषा सीखना सहज तथा आनंददायी अनुभव बन सकता है।

भाषा की कक्षा में इन बातों को ध्यान में रखा जाए, तो भाषा सीखना बच्चे के लिए सरस बन सकता है –

1. **बच्चे के पूर्व अर्जित ज्ञान का स्वागत-** बच्चा जिस क्षेत्र और भाषा से संबंध रखता है उससे संबंधित जानकारी भी अपने साथ लाता है। विद्यालय में आने पर शिक्षक के द्वारा कुछ भी पूछे जाने पर वह अपने पूर्व अर्जित ज्ञान के आधार पर उत्तर देता है। कई-कई बार उसका उत्तर बहुत हास्यास्पद और कभी-कभी कुछ सोचने और समझने के लिए बाध्य करने वाला होता है। ऐसे में शिक्षक को उसके पूर्व अर्जित ज्ञान का

* सेक्टर-4, मकान नं.-276, चिरंजीव विहार, गाज़ियाबाद-201002

स्वागत करते हुए ध्यानपूर्वक सुनते और समझते हुए स्नेह के साथ उसे सीखने का अवसर देना होगा। ऐसा करने से बच्चे आपस में एक-दूसरे की भाषा, संस्कार, विचार और मान्यताओं से अनजाने में ही परिचित हो जाते हैं और सहजता से समझने लग जाते हैं। इस तरह सरलता से वह कितनी बातें कब सीख जाते हैं और भाषा की जो दीवार ज्ञान अर्जन में अड़चन बनी हुई थी कब गिर जाती है, पता ही नहीं चलता और भाषा सीखने की क्षमता विकसित होती जाती है।

2. **बच्चे के घर और विद्यालय में बोली जाने वाली भाषा के बीच में जुड़ाव**- बच्चा विद्यालय अपनी एक विशेष भाषा (क्षेत्रीय विशेषता) के भी साथ आता है। ऐसे में शिक्षक को उसकी भाषा और विद्यालय की भाषा (मानक भाषा) के बीच में जुड़ाव करते हुए उसे धीरे-धीरे सहजता से लेते हुए बोधगम्यता और मानकता की ओर ले जाना होता है। बच्चे जो भाषा पहले बोलना शुरू करते हैं (मातृभाषा या प्रांतीय भाषा) उसी में उनकी समझ बनती है और उसी में वे अर्थ निकालते हैं। ये अर्थ बच्चों के लिए क्या मायने रखते हैं इस को समझना होगा। इसके लिए शिक्षक को कुछ अतिरिक्त मेहनत और नयी तैयारी करनी पड़ सकती है लेकिन बच्चों को भाषा सिखाने के लिए यह एक सार्थक कदम हो सकता है। इससे शिक्षक को बच्चों को उनकी घर की बोली में स्वीकृत करते हुए उनको नयी चीज़ों को सार्थक तरीके से समझाने में मदद मिलेगी। कभी-कभी ऐसी स्थिति भी आती है कि घर की और शिक्षण की भाषा एक ही होती है परंतु भाषा पर क्षेत्रीय प्रभाव अत्यधिक होता है। ऐसे में पाठ के संदर्भ में व्यवहार और अभ्यास के नियमों का आधारभूत ज्ञान कराकर अभ्यास से मानकता तक पहुँचा जा सकता है।

3. **बच्चे की मातृभाषा को प्रोत्साहन** - मातृभाषा को महत्त्व देने से एक विशेष लाभ यह होता है कि बच्चे आपस में एक-दूसरे के क्षेत्र विशेष से परिचित होते हैं और खेल-ही-खेल में सैकड़ों शब्द सीख जाते हैं क्योंकि विद्यालय वह स्थान है जहाँ सभी क्षेत्रों के बच्चे आते हैं। भारत के संविधान की आठवीं अनुसूची में वर्णित 22 राष्ट्र भाषाएँ हैं। विद्यालय आने वाला प्रत्येक बच्चा इन 22 भाषाओं में से किसी-न-किसी एक भाषा को समझने वाला होता है। अब यदि दैनिक ज़रूरत की वस्तुओं के नामों का ही अभ्यास कराया जाए (उदाहरण के लिए-खाना, पहनावा, त्योहार) तो इन भाषाओं के कितने ही शब्द बच्चे सीख जाएँगे जो अध्ययन में सरलता का आधार तो बनेगा ही साथ ही इससे अप्रत्यक्ष रूप से अन्य भारतीय भाषाओं का विकास भी होगा। ऐसा वैज्ञानिक तौर पर माना भी जाता है कि बच्चे के पूर्ण ज्ञान, भाषिक क्षमता

और मानसिक विकास का सही प्रयोग सामान्यत: मातृभाषा में ही संभव होता है और बच्चा ज़्यादा अच्छी तरह समझ पाता है। इससे भाषिक और सांस्कृतिक दूरी को पाटने में भी मदद मिलेगी। वैसे भी अगर आप किसी से कहें कि आप दो-तीन भाषाएँ सीख लीजिए, तो सरलता से यह बिलकुल संभव नहीं होगा और अपने आप में बहुत नीरस होगा। परंतु उपरोक्त विधि को प्रयोग का आधार बनाया जाए तो यह शायद उतना कठिन नहीं होगा जितना प्रथम स्तर पर होगा। हमें यह नहीं भूलना चाहिये कि कोई भी भाषा अपनी सहयोगी भाषाओं के साथ ही विकसित होती है। बच्चे की मातृभाषा को प्रोत्साहन मिलने पर उसे अपने को प्रस्तुत करने का मौका मिलेगा। हो सकता है शुरू में वह गलत उच्चारण करे, उसको आप धीरे-धीरे सही करें। उसको अपनी टूटी-फूटी ही सही अभिव्यक्ति का पूरा मौका दें जिससे उसमें सृजन शक्ति का विकास हो सके, वह अपने को संदर्भ से केंद्रित कर सके और अपनी सृजनात्मकता को विकसित कर सके।

बच्चे की मातृभाषा और लक्ष्य भाषा के बीच सामंजस्य को ऐसे समझा जा सकता है -

बच्चे के घर की भाषा	→	कौन-सी होती है?	=	मातृभाषा
शिक्षण (सीखने) की भाषा	→	कौन-सी होती है?	=	लक्ष्य भाषा
बच्चा विद्यालय आता है	→	कौन-सी भाषा के साथ?	=	मातृभाषा विशेष भाषा और क्षेत्रीय भाषा के साथ

शिक्षक को चाहिए उसकी भाषा और विद्यालय (मानक) की भाषा के साथ सामंजस्य करते हुए सहजता से बोधगम्यता और मानकता की ओर बढ़े -

परिणाम	→	इससे बच्चे में आत्मविश्वास और आत्मनिर्भरता बनेगी जो आगामी शिक्षण के लिए आधार स्तंभ साबित होगी।
लक्ष्य	→	अध्ययन के लिए भाषा का सम्यक ज्ञान
प्रयास	→	शिक्षक द्वारा बच्चों के समझने या मानसिक स्तर के अनुरूप अध्ययन की नीतियों का निर्धारण।

4. **बच्चे की सहज अभिव्यक्ति और शैली को महत्त्व** - कई बार शिक्षक अभिव्यक्ति की बजाय सही उच्चारण पर अधिक बल देते हैं, जिससे बच्चा बहुत भयभीत हो जाता है और जीवन भर के लिए उस अभिव्यक्ति क्षमता को तो खो ही देता है, जो उसकी अपनी थी साथ ही सहयोग के बिना अर्जित की गई अभिव्यक्ति क्षमता में अभिव्यक्त करने में कामयाब भी नहीं हो पाता है। यह बच्चे के लिए गंभीर स्थिति होती है। ऐसे में शिक्षक को

धीरे-धीरे एक-एक करके संशोधन करना होगा, अभ्यास कराना होगा।

जहाँ बच्चा अभिव्यक्ति ना कर पाए वहाँ उसे शब्दों का सहारा देकर उसकी अभिव्यक्ति क्षमता को विकसित करना होगा। जैसे (ष, स, क्ष, श्र) कुछ शब्दों का उच्चारण जो क्षेत्रीय प्रभाव के कारण फर्क होता है।

5. **व्यवहार और अभ्यास के नियमों का ज्ञान** - बच्चे को व्याकरण के नियमों के आधार पर भाषा को सही तरीके से सिखाने के प्रयास में शिक्षक को चाहिए कि वे बच्चे को व्याकरण की अवधारणा को विविध प्रकार के पाठों के संदर्भ में पहचानना और उसका उचित प्रयोग करना सिखाएँ। जैसे-पाठ्यपुस्तक रिमझिम में दिए गए कुछ अभ्यास -

काम वाले शब्द

(क) पिछले साल रिमझिम में तुमने पढ़ा था कि 'बनाना' काम वाला शब्द होता है। काम वाले शब्दों को **क्रिया** कहते हैं। इस **कविता में ढेर सारी** क्रियाएँ या काम वाले शब्द आए हैं। उन्हें छाँटो और नीचे लिखो।

....

....

....

....

(ख) तुमने जो क्रियाएँ छाँटी हैं, वर्णमाला के हिसाब से उनके आगे 1, 2, 3 आदि लिखकर उन्हें क्रम से लगाओ।

यह प्रयास बच्चों को भाषा सिखाने में अत्यंत लाभकारी हो सकते हैं। क्योंकि इन अभ्यासों को करते-करते बच्चे खेल-खेल में व्याकरण के बारीक नियमों को समझने लग जाएँगे जिससे

कौन क्या है?

- बाघ, गाय, बकरी, हाथी और हिरण जानवर हैं। नीचे लिखी हुई चीज़ें क्या हैं? खाली जगहों में लिखो।
  - अगरतला, अल्मोड़ा, रायपुर, कोच्चि, वडोदरा ....
  - जलेबी, लड्डू, मैसूरपाक, कलाकंद, पेड़ा ....
  - नर्मदा, कावेरी, सतलुज, ब्रह्मपुत्र, यमुना ....
  - बरगद, नारियल, पीपल, चीड़, नीम ....
  - गेहूँ, बाजरा, चावल, रागी, मक्का ....
  - कुर्ता, साड़ी, फिरन, लहँगा, कमीज़ ....

(जातिवाचक संज्ञा की पहचान) (*रिमझिम-3* पाठ-मीरा बहन और बाघ)

समझ-समझदारी

रंग	रंगाई
साफ़	....
चढ़	....
बुन	....

(विशेषण बनाना) (रिमझिम-3 पाठ-कब आऊँ)

भाषा तथा अन्य विषयों की पढ़ाई के लिए भी भाषा पर उनकी पकड़ मज़बूत बनेगी। उदाहरण के लिए -

6. **यंत्रवत् भाषा से बचाव** - भाषा को वर्णों और कुछ हद तक अर्थ के आधार पर तो सीखा जा सकता है परंतु गहनता और पूर्णता से नहीं सीखा जा सकता क्योंकि यंत्रवत् तरीके से कई शब्दों को उस अर्थ में संप्रेषित नहीं किया जा सकता जिस अर्थ में उन्हें संप्रेषित करना होता है। यदि नियम याद कराने को वाक्य का आधार बनाएँगे तो सीखने में अत्यधिक कठिनाई होगी जिसमें भाषा को सहजता से नहीं सीखा जा सकेगा। यहाँ अनिवार्य रूप से याद रखना होगा कि व्यवहार और अभ्यास के आधारभूत नियमों के अभ्यास के बिना भाषा सीखना संभव नहीं हो पाएगा।

इस तरह भाषा सिखाने की प्रक्रिया में शिक्षक द्वारा सहजता को आधार बनाकर बच्चे को धीरे-धीरे बेहतर दुनिया और ज्ञान से जोड़ने के लिए प्रारंभ से ही मातृभाषा और प्रांतीय भाषा में सहज ढंग से विचरण कराना होगा। यह काम उसके आत्मगौरव और आत्मविश्वास को ठेस पहुँचाए बिना आहिस्ता-आहिस्ता करना होगा। इससे एक लाभ यह भी होगा कि अपनी जड़ों से बिना जुड़े रहने के कारण मन में अपनी भाषा के प्रति किसी प्रकार की हीन भावना महसूस नहीं होगी और ऐसे बच्चे का प्रांतीय भाषा, मातृभाषा और शिक्षण की भाषा पर पर्याप्त अधिकार होगा।

❑❑❑

5

बाल विकास के लिए खेल-खेल में शालापूर्व शिक्षा

कृष्ण चंद्र चौधरी *

बालमन के सहज विकास के लिए आवश्यक है कि आरंभिक स्तर पर बच्चों को औपचारिक शिक्षा न देकर उन्हें खेल-खेल में ही चीज़ों की अनुभूति करवाते हुए विकास के अवसर दिए जाएँ। ऐसा करना न सिर्फ़ बच्चों को आनंद के साथ सीखने से जोड़ेगा, बल्कि अपने वातावरण की समझ बनाने में भी सहायक होगा। उक्त आलेख बच्चे के संपूर्ण विकास में खेलों के महत्त्व को चरितार्थ करता है।

बाल-जीवन में शालापूर्व शिक्षा की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। इस दौरान बच्चे के व्यवहार, सोच-विचार की प्रक्रियाओं, भावनाओं और रवैये में परिवर्तन होते हैं। इस प्रकार बच्चों के उचित मनोवैज्ञानिक, शारीरिक तथा सामाजिक विकास की नींव रखी जाती है। इस क्रम में बच्चे में जैसे-जैसे वृद्धि होती है, वैसे-वैसे ही उसके मानसिक, शारीरिक, संवेगात्मक एवं प्रवृत्यात्मक व्यवहार का विकास ही नहीं, बल्कि सामाजिक व्यवहार का भी विकास होता है। फलतः शालापूर्व शिक्षा के अंतर्गत बच्चे को प्रारंभिक बाल्यावस्था में ही सामाजिक, भावनात्मक, सृजनात्मक, संज्ञानात्मक, रचनात्मक, शारीरिक, मानसिक तथा सौंदर्यपूर्ण विकास के लिए सहज, आनंदपूर्ण व उत्प्रेरक परिवेश देने और बाल विकास सुनिश्चित करने के लिए सौहार्दपूर्ण वातावरण प्रदान करना चाहिए। बच्चों के व्यक्तित्व का अधिकतम विकास इन्हीं वर्षों (3-6 आयुवर्ग) में होता है, जो कि बच्चों की शालापूर्व शिक्षा की आवश्यकता की पूर्ति करता है। बच्चे अपने जीवन के इस चरण में सर्वाधिक महत्वपूर्ण शिक्षा प्रक्रिया से गुज़रते हैं, जिसमें बौद्धिक प्रेरणा प्रदान करके वाँछनीय अभिवृत्तियाँ विकसित करने में मदद मिलती है।

मस्तिष्क और शरीर के स्वस्थ विकास के लिए बच्चों की अनेक आवश्यकताएँ होती हैं, जैसे अच्छा भोजन, खेलना, पूरा विश्राम व नींद तथा स्वास्थ्य की ओर समुचित ध्यान। बच्चों के संपूर्ण विकास (क्रिया-विधि, खोज, चिंतन, अवधारणा तथा अन्वेषण) के लिए खेलों की आधारभूत सुविधाएँ अनिवार्य रूप से उपलब्ध होनी चाहिए। सभी बच्चों के लिए गुणवत्तापूर्ण शालापूर्व शिक्षा का प्रावधान सुनिश्चित करना चाहिए, जिसके फलस्वरूप

* *संकाय सदस्य*, राष्ट्रीय जन सहयोग एवं बाल विकास संस्थान, इंदौर - 453112

बच्चों का सर्वांगीण विकास हो पायेगा। उपरोक्त बिंदुओं पर ध्यान देना बच्चों के समग्र विकास में सहायक सिद्ध होता है।

शालापूर्व शिक्षा के विभिन्न आयामों के तहत बच्चों के सर्वांगीण (समग्र/संपूर्ण/चहुँमूखी) विकास के लिए शारीरिक व गतिशीलता विकास, भाषा विकास, बौद्धिक (चिंतन/मनन) विकास, ज्ञानेन्द्रिय व भावनात्मक विकास, सामाजिक-व्यक्तिगत विकास, सृजनात्मक व सौंदर्यबोध और संज्ञानात्मक व रचनात्मक विकास आदि के माध्यम से खेल-खेल में जानकारी प्रदान करना है। उपरोक्त कोई भी विकास के लिए गतिविधियाँ कराते समय सभी बच्चों का ध्यान अपनी ओर आकर्षित करें व हाव-भाव (चहल-कदमी) के साथ करें। साथ ही आयुवर्ग के अनुसार ही गतिविधियाँ कराएँ और बच्चों की रुचि को जागृत करें। गतिविधियाँ रुचिपूर्ण विषयवस्तु के अनुरूप करवाएँ।

जिसमें बच्चों के साथ सरल व सुबोध भाषा में स्वतंत्र बातचीत करें। इस क्रम में शारीरिक, मानसिक व सामाजिक विकास को ध्यान में रखते हुए गतिविधियाँ कराएँ। फलस्वरूप खेलों के द्वारा ही सृजनात्मक विकास, तर्क शक्ति व स्मरण शक्ति का विकास हो पायेगा और बच्चों के शारीरिक, मानसिक व सामाजिक विकास की नींव डालने में यह सहायक होगा।

बौद्धिक विकास

बहुत सी खेल-क्रियाएँ ऐसी हैं, जिनसे बच्चे को नए विचार व अवधारणाएँ मिलती हैं और उनकी सोचने की शक्ति का विकास होता है। जीवन

के बेहतर निर्माण हेतु खेल ही बौद्धिक विकास का सृजनात्मक कारण है। बच्चे के मानसिक विकास के लिए तरह-तरह की गतिविधियाँ निरंतर जारी रखनी चाहिए। इससे बच्चे को समाज की मुख्यधारा में शामिल करने में विशेष मदद मिलती है। चूँकि बच्चे ही हमारे सबसे मूल्यवान संसाधन हैं। माता-पिता, भाई-बहन और परिवार के अन्य सदस्यों के द्वारा उद्दीपनपूर्ण वातावरण व अनुकूल परिस्थितियाँ निर्मित करनी चाहिए, जिससे बच्चे की बौद्धिक विकास की प्रक्रिया सतत् रूप से चलती रहे। इस तरह बच्चे को बौद्धिक विकास का आधार प्रदान किया जाता है। बहुत-सी चीज़ें ऐसी हैं जिन्हें हम बहुत आसानी से इकट्ठा कर सकते हैं, जैसे-सीपियाँ, शाखाएँ, पत्ते, कंकड़-पत्थर, बीज, दियासलाई की डिब्बियाँ, बोतलों के ढक्कन और बटन आदि। इस प्रकार की अन्य चीज़ें, जिन्हें गणक की संज्ञा दी गई है, ये खेल क्रियाएँ बड़ों के संरक्षण में बहुत उपयोगी हो सकती हैं।

विज्ञान और परिवेश

बच्चे हर समय अपने परिवेश (आस-पास का वातावरण) से कुछ न कुछ सीखते रहते हैं।

उनमें जिज्ञासा होती है। इसलिए वे हर चीज़ या घटना को ध्यान से देखते हैं और उनके संबंध में सोचते हैं। इस प्रकार की शिक्षा-दीक्षा में माता-पिता, आँगनवाड़ी कार्यकर्ता और शिक्षक काफी सहायता कर सकते हैं। मुख्य रूप से बच्चों को घर में बड़े बहन-भाई, आँगनवाड़ी कार्यकर्ताओं की देख-रेख की ज़रूरत होती है। आप उन्हें सतर्क रहने के लिए, चीज़ों को ध्यान से देखने व सुनने के लिए तथा सोचने-समझने के लिए प्रोत्साहित कर सकते हैं। बच्चों को मानसिक रूप से सतर्क करना और उन्हें विद्यालय के लिए तैयार करना है। विद्यालयों में वैज्ञानिक तरीके से शिक्षा दी जाती है और उसके लिए मानसिक सतर्कता बहुत ज़रूरी है। सीखने का वैज्ञानिक ढंग सिखाना है। विज्ञान सीखने की एक प्रक्रिया है। पूछताछ, स्वतंत्र वार्तालाप, चर्चा, व्यावहारिक प्रयोग, चिंतन और खोज से सीखना ही विज्ञान है। जो भी चर्चा करें उसके मुख्य केंद्र में बच्चे को रखें। इसके लिए आवश्यक है: अवलोकन या ध्यान से देखना, देखे हुए तथ्यों की सूची बनाना, प्रश्न पूछना, उत्तरों का अनुमान लगाना और समझ-बूझ से उत्तरों की खोज करना। घटनाओं की जाँच करके (प्रयोगों से) उत्तरों की खोज करना और समझना कि घटनाएँ क्यों और कैसे होती हैं। उदाहरण के रूप में आप जानते हैं कि, पौधे बीज से उगते हैं, उबलता पानी भाप में बदलता जाता है, पक्षी अंडों से निकलते हैं, धूप में चीज़ें जल्दी सूखती हैं, जब कोई चीज़ प्रकाश की राह में आती है

तो उसकी परछाई पड़ती है, साँस लेने से हवा शरीर के अंदर जाती है, परंतु हम उसे देख नहीं सकते, सिर्फ़ महसूस अथवा एहसास कर सकते हैं।

आज के वैज्ञानिक युग में विज्ञान के अनुभवों का महत्त्व सभी को ज्ञात है। प्रकृति में घटित होने वाली घटनाओं में जो कार्य कारण भाव है, उसे खोजकर सत्य की जानकारी प्राप्त करना आवश्यक है। पेड़ से फल का नीचे गिरना, गीले कपड़ों का सूखना, रोटी का फूलना, बर्फ का पिघलना आदि के कारणों को बच्चे जानना चाहते हैं। बच्चे विविध वस्तुओं का

निरीक्षण करते हैं, तोड़-फ़ोड़कर फिर से बनाने की कोशिश करते हैं, वे बहुत-से प्रयोग करते हैं, निष्कर्ष तक पहुँचने का अथक प्रयास करते हैं। उनकी इस स्वाभाविक प्रवृत्ति का विकास करने के लिए बाल-शाला में बच्चों को विविध प्रकार के अनुभव प्राप्त करने का अवसर देना आवश्यक है। इसी से उनकी सोचने, समझने, चिंतन करने व निर्णय लेने की शक्ति का विकास और वैज्ञानिक दृष्टिकोण का निर्माण होगा।

भाषा विकास

छोटे बच्चे अपने परिवेश में निरंतर भाषा सीखते रहते हैं, किंतु आप उन्हें और अच्छी तरह भाषा सिखा सकते हैं। पाठशाला जाने पर उन्हें पढ़ना-लिखना सिखाया जाता है, जो कि भाषा विकास के लिए एक मील का पत्थर साबित होता है। भाषा समझना और अच्छी तरह बोलना आ जाना चाहिए, अपने विचारों और भावों को भी अपनी मातृभाषा में अभिव्यक्त करना आना चाहिए। बच्चे भाषा कई प्रकार से सीखते हैं जैसे- सुनने से, अनुकरण से, दोहराने व बातचीत करने से, अभ्यास से, दूसरों के प्रोत्साहन से आदि। इस प्रकार भाषा विकास के लिए बच्चों को कहानी (दैनिक क्रियाकलाप, नैतिक शिक्षा, शेर, हाथी, खरगोश, बंदर आदि), गीत, कविता (गंगा, कोयल, चंदामामा, विनती, फूल, झंडा, जानवरों आदि) सुनाते समय सुनियोजित व सुव्यवस्थित तरीके के साथ ही हाव-भाव प्रभावी तरीके से (मनमोहक) होना चाहिए। इसके साथ ही बच्चों से मौखिक निबंध प्रारंभ कर देना चाहिए। और बच्चों को घरेलू (पालतू), जंगली व जल में रहने वाले जानवरों के संदर्भ में जानकारी देना एवं उससे रू-ब-रू करना चाहिए, जो कि चित्र के माध्यम से हो सकता है या आस-पास के परिवेश में अथवा चिड़ियाघर (वन्य पशु एवं पक्षी प्राणी संग्रहालय) में जाकर आदि। जिससे भाषा विकास में गुणात्मक परिवर्तन होता है।

ज्ञानेन्द्रिय व भावनात्मक विकास

बच्चे जैसे-जैसे बढ़ते हैं, वैसे-वैसे उनका शारीरिक व मानसिक विकास भी होता रहता है। वे निरंतर कुछ न कुछ सीखते रहते हैं। वे सीखते हैं, जैसे- देखने से, सुनने से, छूने से और इधर-उधर घूमने से (नैसर्गिक परिभ्रमण), चखने से, सूंघने से और स्वतंत्र आंतरिक व बाह्य खेलों से। इन क्रियाओं द्वारा बच्चों को भिन्न-भिन्न प्रकार के अनुभव होते हैं। वे कभी अपने अनुभवों पर सोचते हैं और कभी उन्हें अलग-अलग तरीकों से दोहराते हैं। अपने अनुभवों को दोहराने में भी उन्हें नए अनुभव होते हैं। वे तरह-तरह की कल्पना करते हैं और इससे भी उन्हें नए अनुभव होते हैं। वे अपने भावों व विचारों को अभिव्यक्त करना और उन्हें दूसरों तक पहुँचाना भी सीखते हैं।

संज्ञानात्मक विकास हेतु रचनात्मक क्रियाएँ

बच्चों को रचनात्मक खेल खेलना अर्थात् अपने हाथों से नयी-नयी आकृतियाँ बनाना बहुत अच्छा लगता है। रचनात्मक खेल खेलते समय बच्चे अपनी ज्ञानेन्द्रियों द्वारा अपने परिवेश अर्थात् आस-पास की खोज करते हैं, उसे देखते और समझते हैं। इससे उनकी जानकारी बढ़ती है, उन्हें

नए अनुभव होते हैं, उनकी कल्पना का विकास होता है। नयी-नयी चीज़ों की रचना द्वारा उनके भावों और विचारों को अभिव्यक्ति मिलती है, उनकी छोटी व बड़ी माँसपेशियों में तालमेल बढ़ता है और उनकी अपनी गतिविधियों पर नियंत्रण बढ़ता है। इसलिए हम जब भी बच्चों के लिए ''कला या हस्त कौशलता'' की बात कहते हैं, तो हमारा तात्पर्य केवल उनके कुछ करने व पदार्थों से आकृति बनाने से होता है। इसीलिए उन्हें प्राय: 'रचनात्मक क्रियाएँ' कहा जाता है, परंतु हमें यह सदा ध्यान रखना चाहिए कि बच्चों को वही करना अच्छा लगता है, जिसे वे खुद कर सकते हैं अर्थात् उन्हें खुद करके सीखना अच्छा लगता है। रचनात्मक क्रियाओं द्वारा हम बच्चों की क्षमताओं को विकसित करने में सहायक हो सकते हैं- उन्हें सिखा सकते है: अपनी पाँचों ज्ञानेन्द्रियों (आँख, कान, नाक, त्वचा व जीभ) का लाभ उठाना, नए अनुभव प्राप्त करना, अपनी कल्पना का उपयोग करना, अपने भावों और विचारों की अभिव्यक्ति करना, हाथों, अँगुलियों और माँसपेशियों को इस्तेमाल करना, कला-कौशल का अभ्यास करना, हाथों

और नेत्रों में सामंजस्य स्थापित करना, सुंदरता को पहचानना और उसका आनंद उठाना व प्रफुल्लित होना आदि।

बच्चा जब जन्म लेता है, तब उसके लिए सभी चीज़ें नयी होती हैं, वह वातावरण से अनभिज्ञ होता है। जैसे-जैसे उसकी उम्र बढ़ती जाती है, वह स्वत: प्रयत्न से अपने ज्ञानेन्द्रियों के माध्यम से अलग-अलग अनुभव प्राप्त करता है, जिज्ञासावश वह बड़ों व प्रौढ़ों से प्रश्न करके वातावरण से परिचय प्राप्त कर लेता है (प्रतिदिन के जीवन में बच्चा देखकर, सुनकर, चखकर, सूँघकर स्पर्श द्वारा ज्ञान प्राप्त करता है। उदाहरण- माँ की आवाज़ पहचानने लगता है, उसके स्पर्श में आनंद का अनुभव करता है और स्वाद को जानने लगता है।

बच्चा जब किसी भी विषय का ज्ञान प्राप्त करता है तो निम्नलिखित विधियाँ प्रयोग में लाई जानी चाहिए। संज्ञानात्मक विकास के लिए आवश्यक प्रारंभिक कौशल – 1. देख कर, अनुभव प्राप्त करना, 2. सुनना व समझना, 3. स्पर्श में भेद जानना, 4. सूँघना

तथा गंध में भेद पहचानना और 5. स्वाद पहचानना इत्यादि। विधियों के प्रयोग से किसी भी विषय का ज्ञान बच्चों को सहजता से हो जाता है। संज्ञानात्मक विकास की गतिविधियाँ – स्मृति-निरीक्षण, अंतर पहचानना, जोड़ी जमाना, रंगों को पहचानना, वर्गीकरण, क्रमबद्धता, कमियाँ ढूँढ़ना, सह-संबंध, घटता-क्रम, आकृति-ज्ञान, आकृति जमाना (फूलों, जानवरों, सब्ज़ियों, हिंदी व अंग्रेज़ी अक्षरों का ज्ञान आदि) समस्या समाधान आदि। बच्चों के प्रारंभिक प्रत्यय – अध्याय, रंग, स्थान, समय, ताप, अंक पूर्व प्रत्यय और सजीव-निर्जीव आदि। संज्ञानात्मक विकास के लिए पंचेन्द्रियों का ज्ञान होना अत्यंत ज़रूरी है। दर्शनेन्द्रिय बच्चों की सभी इन्द्रियों में सबसे प्रभावशाली होती है (अतः हम दर्शनेन्द्रिय से संबंधित क्रियाओं के बारे में सोचें)। इस इन्द्रिय से आकार एवं रंग का बोध होता है। फलतः बच्चा जब जन्म लेता है तभी से सुनने की क्षमता उसमें होती है। बड़े होने के साथ-साथ ही वह भिन्न-भिन्न आवाज़ों में भेद पहचानने लगता है। बच्चा सर्वप्रथम अपनी माँ की आवाज़ को पहचानता है। उसके पश्चात् आस-पास के व्यक्ति, प्राणी, पक्षी आदि की आवाज़ धीरे-धीरे बच्चा पहचानने लगता है।

सामाजिक-व्यक्तिगत विकास

सामाजिक-व्यक्तिगत विकास का अर्थ है, अच्छी आदतों, अच्छे व्यवहार, सही अभिवृत्तियों और सही मानव मूल्यों का विकास। इस क्रम में सामाजिक विकास के लिए जीवन के आरंभिक वर्ष विशेष महत्वपूर्ण होते हैं, क्योंकि बाल्यकाल के अनुभवों का प्रभाव व्यक्ति में जीवन भर या बहुत लंबे समय तक बना रहता है। जीवन के इन्हीं वर्षों (3-6 आयुवर्ग) में बच्चे अपने परिवेश से अनेक आदतें, व्यवहार, आचरण के तौर-तरीके, अभिवृत्तियाँ और मूल्य ग्रहण करते हैं और समाज के साथ सामंजस्य और तालमेल स्थापित करते हैं। अतः बच्चों का 92 प्रतिशत विकास इन्हीं वर्षों में होता है। इसीलिए छोटे बच्चों में अच्छी आदतों और सही अभिवृत्तियों को विकसित करना बहुत ज़रूरी है। बच्चों पर उनके परिवेश, परिवार और संगी-साथियों का बहुत प्रभाव पड़ता है, लेकिन बालगृह और बाल-पालन केंद्र भी अच्छी आदतों और मूल्यों को सिखाने में काफी सहायक हो सकते हैं। इस काल-क्रम में नैतिक शिक्षा भिन्न-भिन्न माध्यमों से बच्चों के सामाजिक-व्यक्तिगत विकास हेतु प्रदान की जाती है। इस प्रकार बच्चे के चरित्र-निर्माण में शालापूर्व शिक्षा महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। शालापूर्व शिक्षा बच्चे के जीवन में मज़बूत सामाजिक-व्यक्तिगत विकास की नींव डालती है और वह अन्य बच्चों के साथ प्यार से रहना सीखता है।

व्यवहार परिवर्तन

बच्चे केवल अपनी गतिविधियाँ यानी अवलोकन, अनुकरण, दोहराने या संतोषजनक क्रियाओं से ही नहीं सीखते, उनके व्यवहार पर पुरस्कार और नियम प्रणाली का भी प्रभाव पड़ता है। कभी-कभी बच्चों के साथ पुरस्कार या अनुशासन का प्रयोग करना आवश्यक हो जाता है, जिससे वे सही और गलत में अंतर

करना सीखते हैं, तथापि यह कहा जा सकता है कि शिक्षा-दीक्षा की उत्तम व्यवस्था वही है जो पुरस्कार और नियम प्रणाली (अनुशासन) दोनों से पूर्ण रूप से मुक्त हो अर्थात् अनुकूल वातावरण में ही बच्चे को व्यवहार परिवर्तन की सही रूपरेखा प्रदान की जा सकती है इसके साथ ही माता-पिता का वात्सल्य प्रेम और शिक्षकों का सकारात्मक सहयोग, बच्चों के मनो-सामाजिक व व्यवहार परिवर्तन में सहायक सिद्ध होता है। इस क्रम में बच्चे जीवनशैली, व्यावहारिक, आधारशिला, सामाजिक समायोजन, सामाजिक संबंध व व्यवहार और भावना को व्यक्त करना सीखने लगते है। इस तरह बुनियादी तौर पर वे भौतिक, सांस्कृतिक, बौद्धिक, सामाजिक, नैतिक गुण, सामुदायिक और जैविक वातावरण में अपने आप ही समन्वय स्थापित करने लगते हैं। इसके उपरांत बच्चे संपूर्ण विकास की ओर अग्रसर होते है। बच्चों के व्यवहार परिवर्तन में शाब्दिक व मौखिक संवेदना का बोध होगा, जिससे बच्चे शालीन व भावनात्मक रूप से मज़बूत एवं दृढ़ होंगे।

संपूर्ण बाल विकास

बच्चों के सामाजिक-भावनात्मक, शारीरिक, भाषायी कौशलों, बौद्धिक, सृजनात्मक अभिव्यक्ति, सौंदर्यानुभूति एवं खेल गतिविधियों के विकास से प्रारंभिक बाल्यावस्था में शिक्षा का गुणात्मक उन्नयन हो पायेगा। खेल बच्चों के विकास के लिए मूलभूत आवश्यकता है। बच्चे खेल-खेल में काफी कुछ सीख लेते हैं। बाल विकास खेल-खेल के लिए और आनंद के लिए हो। इसके तहत् खेल-खेल में प्राणियों की चालों को चलकर और भारीपन या हल्केपन से आवाज़ को निकालकर भिन्न-भिन्न प्रकार की क्रिया बच्चों से कराएँ। जिससे खेल के द्वारा बच्चे की छोटी और बड़ी माँसपेशियों का विकास होता है, मस्तिष्क का विकास होता है और वह अन्य बच्चों के साथ प्यार से रहना सीखता है। खेल बच्चे की शारीरिक आवश्यकताओं की पूर्ति करते हैं, और उसे जीवन की भावी महत्वपूर्ण क्रियाओं के लिए तैयार करते हैं। इसके साथ-साथ बच्चों के सर्वांगीण विकास की नींव की आधारशिला शालापूर्व शिक्षा के दौरान ही तैयार की जाती है। इस तरह आने वाले समय में बच्चों में निश्चित ही आत्मविश्वास का संचार होगा और भावनात्मक नियंत्रण व संतुलन कायम कर सकेगा। बच्चों में मनो-सामाजिक परिवर्तन, स्वतंत्र रूप से खेलने से उत्पन्न होता है, जिससे उनके व्यक्तिगत विचारों का शुद्धिकरण होता है, इसके लिए अच्छे सामाजिक समायोजन एवं आदर्श वातावरण उत्पन्न करना चाहिए। इसके फलस्वरूप नैसर्गिक रूप से बच्चों के व्यवहार परिवर्तन में मनो-सामाजिक विचार का आधार स्तंभ तैयार हो सकेगा। वस्तुत: सीखना तभी संभव होगा जब बच्चों को आत्मीयतापूर्ण व्यवहार मिले, खेल-खेल में शिक्षण प्रक्रिया रोचक व सुरुचिपूर्वक हो, बच्चों की कमियों को शारीरिक या मानसिक दंड देकर

नहीं, बल्कि स्नेह से सुधारा जाए। बच्चे को स्नेहपूर्ण व्यवहार मिले तो सीखना उसके लिए आनंदमय बन जाता है। शालापूर्व शिक्षा बच्चों की बुनियाद तैयार करता है, जो कि बच्चों को स्कूल से पूर्व मानसिक रूप से तालमेल बैठाने का कार्य करता है। इसलिए बच्चों को स्कूल से जोड़ने से पहले शिक्षक की ज़िम्मेदारी काफी बढ़ जाती है। जिससे आने वाले समय में बच्चों को गुणात्मकपूर्ण शिक्षा दी जा सकेगी। बच्चों को एक बेहतर भविष्य सुनिश्चित करने के लिए शालापूर्व शिक्षा का अमूल्य योगदान होता है, जो कि खेल-खेल में बच्चों के समग्र विकास के पूर्व प्रारंभिक रुचि को शिक्षा की बुनियाद की ओर अग्रसर करेगा। खेल-खेल में शालापूर्व शिक्षा बच्चों का मनोरंजन करती है और प्रकृति के साथ उनका रिश्ता भी बनाती है। और देखा गया है कि बच्चे जानवरों, पेड़-पौधों, चिड़िया, फूल-पत्तियों, पहाड़ों, नदियों, समुद्रों आदि को बेहद पसंद करते हैं। जो कि कालांतर में एक सृजनशील व्यक्तित्व का निर्माण करेगा। इसके फलस्वरूप सर्वप्रथम शालापूर्व शिक्षा उपलब्ध कराने पर ज़ोर दिया जा रहा है, ताकि शिक्षा का सारा तंत्र पूरे राष्ट्र के लिए उपयोगी सिद्ध हो सके और राष्ट्र निर्माण में एक मील का पत्थर साबित हो। भारतीय समाज का एक बहुत बड़ा वर्ग शालापूर्व शिक्षा के महत्त्व को समझने लगा है और इसके सकारात्मक परिणाम व बाल विकास की आवश्यकता के महत्त्व को भी जानने लगा है, जो कि आने वाले समय में अच्छे मानव संसाधन विकास में अपनी उपयोगिता सिद्ध करेगा और राष्ट्र की क्षमता बढ़ाएगा। संक्षेप में, मानव शिशु इस धरती पर सबसे तीव्र गति से सीखने वाला प्राणी है। जन्म लेते ही तेजी से सीखने की योग्यता मनुष्य के बच्चे की अनूठी विशेषता है। आरंभिक वर्ष जीवन की सर्वाधिक महत्वपूर्ण अवधि है, क्योंकि इसी समय गतिशीलता, संवेदी, संज्ञानात्मक, भाषाई, सामाजिक और व्यक्तित्व के विकास के लिए नींव रखी जाती है। शालापूर्व शिक्षा में बच्चे के व्यक्तित्व निर्माण और चहुँमुखी विकास को ही बुनियादी तौर पर लक्ष्य माना जाता है। स्वस्थ व सकारात्मक माहौल में खेल-खेल में उन्हें बहुत कुछ सिखाया-पढ़ाया जा सकता है, इससे बच्चा का बौद्धिक विकास होता है। इसके उपरांत बच्चे सीखने के प्रति तत्परता व कटिबद्धता दिखाता है। सीखने वाली शैली के साथ भाषा का माध्यम अधिक सुरुचिपूर्ण, प्रभावोत्पादक और सुगम हो तो इसका उनके मनो-मस्तिष्क पर सकारात्मक प्रभाव पड़ता है। शालापूर्व (प्रारंभिक बाल्यावस्था) शिक्षा बच्चों के विकास के लिए है, इसलिए उन्हें केंद्र में रखकर ही खेलों के संपूर्ण माध्यम से आधारभूत पाठ्यक्रम, पाठ्यचर्चा और ज्ञान की पूर्ति करना चाहिए।

संदर्भ ग्रंथ

प्रसन्न, के., 2005. *राष्ट्रीय पाठ्यचर्या 2005: एक विमर्श योजना,* नयी दिल्ली, सितंबर 2005.

शालापूर्व शिक्षा पाठ्यक्रम रूपरेखा (ड्राफ्ट)-2012, महिला एवं बाल विकास मंत्रालय, भारत सरकार (2012).

स्वामीनाथन, एम., 1987. *बच्चों के लिए खेल-क्रियाएँ,* यूनिसेफ़, नयी दिल्ली 1987.

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा-2005, एन.सी.ई.आर.टी., नयी दिल्ली 2005.

नेशनल करिकूलम फ्रेमवर्क फ़ॉर टीचर एजुकेशन: टूवर्ड्स प्रिपेयरिंग प्रोफेशनल एंड ह्यूमन टीचर-2009, नयी दिल्ली - नेशनल काउंसिल फॉर टीचर एजुकेशन 2009.

नेशनल नॉलिज कमीशन रिपोर्ट, नयी दिल्ली-गवर्नमेंट ऑफ़ इंडिया 2007.

❑❑❑

शिक्षा का अधिकार अधिनियम-2009 के क्रियान्वयन में गैर-सरकारी संगठनों की भूमिका

मंजू देवी*

सरकार के विभिन्न कार्यक्रमों एवं नीतियों के क्रियान्वयन के लिए ज़रूरी है कि सरकारी संगठनों के साथ ही साथ गैर-सरकारी संगठन भी अपनी भूमिका का निर्वहन करें, तभी कोई भी कार्यक्रम एवं नीति सतही स्तर पर आमजन को लाभान्वित कर पाएगी। शिक्षा का अधिकार अधिनियम-2009 एक ऐसी नीति है जिसे आमजन तक ले जाने की संपूर्ण ज़िम्मेदारी सरकारी एवं गैर-सरकारी संगठनों की है। उक्त आलेख इसी परिपेक्ष्य में गैर-सरकारी संगठनों की भूमिका को रेखांकित करता है।

शिक्षा का अधिकार अधिनियम-2009 के क्रियान्वयन में गैर-सरकारी संगठन (NGO) की महत्वपूर्ण भूमिका है। जैसा कि सभी लोग जानते हैं, प्राथमिक स्तर पर शिक्षा की दशा जैसी होनी चाहिए, वैसी नहीं है। किसी भी मानव समाज में शिक्षा का बहुत महत्वपूर्ण स्थान होता है। शिक्षा मानव के विकास का मूल साधन है। मानव जीवन में प्राथमिक शिक्षा का बहुत ही महत्त्व है। यह सत्य है कि मनुष्य के व्यक्तित्व के निर्माण में प्रारंभिक जीवन में उसे दी गई शिक्षा का महत्वपूर्ण स्थान है।

शिक्षा का अधिकार अधिनियम-2009 में स्पष्ट रूप से लिखा गया है कि भारत के 6 से 14 वर्ष आयु वर्ग के बीच आने वाले सभी बच्चों को नि:शुल्क तथा अनिवार्य शिक्षा दी जाएगी। नि:शुल्क से तात्पर्य है कि किसी भी बच्चे द्वारा कोई फ़ीस/शुल्क नहीं लिया जाएगा, जो कि उसकी प्रारंभिक शिक्षा को पूर्ण करने में बाधक हो। अनिवार्य से तात्पर्य है 6 से 14 वर्ष के सभी बच्चों को शत-प्रतिशत नामांकन, शत-प्रतिशत उपस्थिति तथा शत-प्रतिशत बच्चों को प्रारंभिक शिक्षा पूर्ण कराने की संवैधानिक अनिवार्यता राज्य सरकार की है।

शिक्षा का अधिकार अधिनियम-2009 में स्पष्ट रूप से उल्लेख है कि प्राथमिक शिक्षा खत्म होने से पहले किसी भी बच्चे को रोका नहीं जायेगा और न ही उसे स्कूल से निकाला जाएगा। दुर्भाग्य से ऐसा हो नहीं पाता। यद्यपि

* *एसोसिएट प्रोफ़ेसर* (मनोविज्ञान), काशी नरेश स्नातकोत्तर महाविद्यालय, ज्ञानपुर,संत रविदास नगर, भदोही, वाराणसी, उत्तर प्रदेश

सरकार ने स्कूलों और शिक्षकों को बहुत-सी सुविधाएँ दी हैं, लेकिन भारतवर्ष में जिस तरह की सामाजिक विषमताएँ हैं, वहाँ बच्चा कहीं-न-कहीं उस भेदभाव का शिकार हो जाता है। समाज में फ़ैले हुए भेदभाव को कम करने में गैर-सरकारी संगठन महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर सकते हैं, क्योंकि गाँवों में यह देखा जाता है कि अनुसूचित जाति एवं जनजाति के बच्चों के साथ अन्य जाति के बच्चे और अध्यापक भेदभाव करते हैं और उनके साथ विद्यालय में बैठकर पढ़ने से मना कर देते हैं। ऐसी स्थिति में गैर-सरकारी संगठनों की भूमिका बहुत महत्वपूर्ण हो जाती है। वे स्कूलों में जाकर यह बता सकते हैं कि इस तरह का भेदभाव गलत है तथा सभी बच्चे एक समान हैं। समाचार पत्रों में यह खबर भी आती रहती है कि किसी विशेष जाति का होने के कारण बच्चे के साथ भेदभावपूर्ण व्यवहार किया गया। यदि कहीं भी भेदभावपूर्ण व्यवहार हो तो उसे रोकने के लिए गैर-सरकारी संगठनों तथा पूरे समुदाय को आगे आना होगा।

शिक्षा का अधिकार अधिनियम-2009 में आर्थिक रूप से कमज़ोर समुदायों के लिए सभी निजी स्कूलों में कक्षा-1 में दाखिला लेने के लिए 25 फीसदी आरक्षण की बात की गई है। गैर-सरकारी संगठनों की इस मुद्दे पर सबसे महत्वपूर्ण भूमिका हो सकती है, क्योंकि कोई भी निजी स्कूल बिना दबाव के 25 प्रतिशत आर्थिक रूप से कमज़ोर बच्चों को एडमिशन नहीं देगा। अगर निजी स्कूल अपनी मनमानी के लिए स्वतंत्र हैं, और सरकारें अगर ऐसे स्कूलों पर किसी भी तरह का नियंत्रण स्थापित नहीं कर सकतीं तो शिक्षा के अधिकार कानून का उन बच्चों के लिये क्या महत्त्व रह जायेगा? शिक्षा के अधिकार अधिनियम में स्पष्ट उल्लेख है कि किसी भी स्कूल में बच्चों की प्रवेश परीक्षा नहीं ली जायेगी तथा किसी भी तरह का डोनेशन नहीं लिया जायेगा तथापि ऐसे स्कूल सारे नियमों को ताक पर रखकर प्रवेश परीक्षा ले रहे हैं तथा बड़े नामी-गिरामी स्कूलों में डोनेशन के बिना एडमिशन नहीं हो रहे हैं। अगर कोई भी व्यक्ति या संगठन इसके विरुद्ध आवाज़ उठाता है तो उनके पास उसकी आवाज़ को दबाने के हजारों उपाय होते हैं। गैर-सरकारी संगठन (NGO) इस मुद्दे को उठाने तथा स्कूलों पर दबाव बनाने का काम आसानी से कर सकते हैं। यदि निजी स्कूल फिर भी नहीं मानें तो गैर-सरकारी संगठन ऐसे स्कूलों की मान्यता रद्द करने के बारे में सरकार को लिख सकते हैं।

सामाजिक नागरिक संगठनों के मंच आर.टी.ई. फ़ोरम की एक रिपोर्ट के मुताबिक राजनीतिक इच्छाशक्ति की कमी, केंद्र राज्य सहयोग का अभाव, स्कूलों और अध्यापकों की कमी ऐसे कारण हैं, जिनके चलते शिक्षा के अधिकार कानून का फायदा ज़रूरतमंद बच्चों को नहीं मिल पा रहा है। इस कानून में स्पष्ट रूप से पच्चीस प्रतिशत वंचित, कमजोर वर्ग के बच्चों को निजी स्कूल में मुफ्त शिक्षा पाने का अधिकार दिया गया है, लेकिन पूरे देश में एक भी स्कूल ऐसा नहीं है, जिसने इस नियम का पालन करने में अगुवाई की हो। शिक्षा का अधिकार अधिनियम-2009 लागू होने के बाद भी कोई आँकड़ा अभी तक उपलब्ध नहीं है कि

निजी स्कूलों में कितने प्रतिशत वंचित वर्ग के बच्चे पढ़ रहे हैं। गैर-सरकारी संगठनों (NGO) को सरकार को स्वयं आगे आकर इन स्कूलों में मॉनीटरिंग के लिए भेजना चाहिए, ताकि निजी स्कूलों की तानाशाही को रोका जा सके।

कहीं-कहीं तो सरकारी प्राइमरी विद्यालयों की स्थिति बहुत खराब है। एक तो उनके पास स्कूल के लिए इमारतें, कमरे, कुर्सी, मेज यहाँ तक कि चॉक का भी अभाव है तो दूसरी ओर शिक्षकों का अपने ही स्कूल तथा बच्चों की पढ़ाई के प्रति रुझान बहुत कम है। बच्चा (लड़का/लड़की) क्या पढ़ रहा है या क्या सीख गया या किस बच्चे में क्या सीखने की क्षमता है, शिक्षकों के पास यह सोचने की फ़ुर्सत ही नहीं है। देश के स्कूलों में ऐसे बहुत से शिक्षक मिल जायेंगे, जिन्हें केवल अपने वेतन से मतलब है। शिक्षकों को अपने कर्तव्यों के प्रति जागरूक करने का काम गैर-सरकारी संगठन अच्छी तरह से कर सकते हैं। शिक्षा का अधिकार अधिनियम-2009 में शिक्षा की गुणवत्ता में अनिवार्य सुधार की बात की गई है, लेकिन बहुत दुख के साथ कहना पड़ रहा है कि स्कूलों में शिक्षकों की कमी अभी भी बहुत ज़्यादा है। कानून की निगरानी का दायित्व राष्ट्रीय बाल अधिकार संरक्षण आयोग को सौंपा गया है, लेकिन आयोग को अपने एक साल के आकलन में निराशा ही प्राप्त हुई है।

आज मुख्य सवाल शिक्षा की गुणवत्ता का है। जितना ज़रूरी यह है कि सभी बच्चों को स्कूल भेजा जाए, उतना ही ज़रूरी यह भी है कि बच्चे को गुणवत्तापूर्ण शिक्षा दी जाए। बच्चे सचमुच कितना सीख रहे हैं, इसका आकलन करने में गैर-सरकारी संगठन महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं। सिर्फ सबको शिक्षा देने की औपचारिकता से उद्देश्यों को हासिल नहीं किया जा सकता है।

सरकार ने सुविधाएँ बहुत-सी दी हैं, लेकिन आज भी समाज में जागरुकता की कमी है। जब तक अभिभावक यह नहीं समझेंगे कि बच्चे का पढ़ना बहुत ज़रूरी है, तब तक शिक्षा के अधिकार कानून को प्रभावी नहीं बनाया जा सकता है। गैर-सरकारी संगठन समाज में शिक्षा के प्रति जागरुकता लाने में सहयोग कर सकते हैं। एन.जी.ओ. प्रत्येक गाँव बस्ती, मुहल्ले में जाकर अभिभावकों को अपने बच्चों को स्कूल भेजने के लिए प्रोत्साहित कर सकते हैं। एक ओर देश की गरीबी, दूसरी ओर गाँवों में लोगों का यह सोचना कि बच्चे पिता के साथ रहकर काम करेंगे तो कुछ पैसे आएँगे, जिससे वे अपने बच्चों को स्कूल नहीं भेजते हैं। ऐसी सोच के कारण शिक्षा का स्तर देश में वैसा नहीं हो पाया है, जैसा होना चाहिए। गैर-सरकारी संगठन अभिभावकों को समझा सकते हैं कि शिक्षा का जीवन में महत्वपूर्ण स्थान है तथा शिक्षा के द्वारा हम दूसरों के शोषण से बच सकते हैं। गैर-सरकारी संगठन कुछ संबंधित कार्यक्रम जैसे-स्वास्थ्य, पर्यावरण जागरुकता के कार्यक्रम चलाकर यह दिखा सकते हैं कि शिक्षित होने के कारण स्वास्थ्य की देखभाल भी हम ठीक तरह से कर सकते हैं।

शिक्षा का अधिकार अधिनियम में स्पष्ट लिखा गया कि बच्चों को शारीरिक दंड देना एवं मानसिक रूप से प्रताड़ित करना प्रतिबंधित है, लेकिन प्राय: समाचार पत्रों में यह पढ़ने को मिलता है कि अमुक स्कूल में बच्चे को शिक्षक द्वारा इतना पीटा गया कि बच्चे का हाथ टूट गया या उसकी आँख फूट गई। शिक्षकों को ऐसा कार्य नहीं करना चाहिए। गैर-सरकारी संगठन शिक्षकों को समझा सकते हैं कि उन्हें किसी भी बच्चे को प्रताड़ित नहीं करना चाहिए। बच्चा चाहे अपना हो या किसी और का, उसके साथ मानवीय व्यवहार करना सभी का कर्तव्य है।

शिक्षकों को गैर-शिक्षकीय कार्य में लगाना प्रतिबंधित कहा गया है (कुछ कार्यों को छोड़कर), लेकिन शिक्षक न जाने कौन-कौन से कार्यों में लगे हुए हैं। जैसे-पल्स पोलियो, राशन कार्ड, निर्वाचन नामावली बनवाना आदि न जाने कितने कार्य हैं, जिसे शिक्षकों को करना पड़ता है, जिससे उनका मनोबल प्रभावित होता है। सरकार ने भी अप्रशिक्षित शिक्षकों की नियुक्ति अलग-अलग राज्यों में अलग-अलग नाम से की है। जैसे-शिक्षा मित्र, शिक्षा सहायक। कहीं-कहीं तो देखा गया है कि कुछ पैसे पाने वाले इन शिक्षा मित्रों पर पूरे विद्यालय की ज़िम्मेदारी होती है। ऐसी स्थिति में गुणवत्तापूर्ण शिक्षा कैसे प्राप्त की जा सकती है? शिक्षा का अधिकार अधिनियम में निश्चित शिक्षक-छात्र अनुपात की सिफारिश की गई है, जबकि दो-ढाई हजार रूपया पाने वाला शिक्षा मित्र कक्षा 1 से 5 तक की सभी कक्षाओं को अकेले कैसे सँभाल सकता है? यद्यपि स्वतंत्रता के बाद सरकार द्वारा लाया गया शिक्षा का अधिकार अधिनियम-2009 एक महत्वपूर्ण अधिनियम है तथा प्राथमिक विद्यालयों की स्थिति के मूल्यांकन के लिए गैर-सरकारी संगठन प्रत्येक स्तर पर महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर सकते हैं। जैसे-विद्यालयों में सफाई की व्यवस्था क्या है? झाडू कौन लगाता है? शौचालय की व्यवस्था कैसी है? शिक्षक के आने और जाने का समय क्या है? वे पढ़ाते हैं या केवल रजिस्टर पर हस्ताक्षर करके चले जाते हैं? आदि।

उत्तर प्रदेश के कई स्कूलों में जब सर्वेक्षण कर रही थी तो अनुसूचित जाति के बच्चों ने कहा कि मास्टर जी हम लोगों से क्लास रूम में झाडू लगवाते हैं। आखिर अध्यापकों की मानसिकता में बदलाव कैसे आयेगा? स्कूलों में सफाई की व्यवस्था की ज़िम्मेदारी किसकी है, यह देखना महत्वपूर्ण है। गैर-सरकारी संगठन इन सभी बिंदुओं पर सर्वेक्षण करके सरकार को अपनी रिपोर्ट दे सकते हैं कि स्थिति को और अच्छा कैसे बनाया जा सकता है?

प्राथमिक विद्यालयों में शिक्षकों का समय से आना अति आवश्यक है। इसके लिए एक पूरी नीति तैयार करनी होगी। नियुक्ति के समय शिक्षक अपना पता उसी जनपद का दे देते हैं, जहाँ उन्हें नियुक्ति चाहिए, लेकिन उनका उन गाँवों से दूर-दूर तक रिश्ता नहीं होता। शहरी समाज में पले-बढ़े इन शिक्षकों का ग्रामीण बच्चों से कोई भावनात्मक लगाव नहीं होता है। वे शहर में रहते हैं और सत्तर-अस्सी किमी. की

दूरी तय करके किसी तरह विद्यालय पहुँचते हैं। क्या वे समय से विद्यालय पहुँच पाते होंगे? फिर उन्हें वापस अपने घर आने की जल्दी रहती है। सरकार को ऐसे शिक्षकों की नियुक्ति करने के पहले ही सोचना होगा कि विद्यालयों में इनका कितना सहयोग होगा। इन सब समस्याओं से निपटना बहुत चुनौती भरा काम है। नियुक्ति उन्ही शिक्षकों की करनी चाहिए जिनका आवास दस से बीस किलोमीटर के बीच हो तथा वे आस पास के गाँवों के ही हों। अच्छा तो यही है कि आस-पास के गाँवों के बी.ए., एम.ए. पास लोगों को नियुक्त कर लिया जाए और फिर दो वर्ष की ट्रेनिंग सेंटर भी ग्रामीण क्षेत्र में ही हो। प्रत्येक विद्यालय का मूल्यांकन हर छः माह में करना अनिवार्य कर देना चाहिए। शिक्षकों के कर्तव्य के साथ उनकी समस्याओं पर भी प्राथमिकता के साथ विचार-विमर्श होना चाहिए। गैर-सरकारी संगठनों का यहाँ पर सहयोग लिया जा सकता है।

शिक्षा का अधिकार अधिनियम में कमज़ोर एवं वंचित वर्ग के बच्चों पर विशेष ध्यान देने की बात की गई है। ऐसे बच्चों के लिए एक निगरानी समिति का गठन गैर-सरकारी संगठनों के द्वारा किया जा सकता है। कमज़ोर एवं वंचित वर्ग के बच्चे जो कि गरीबी रेखा से नीचे का जीवन-यापन कर रहे हैं, उनके लिए शिक्षा अति आवश्यक है। बहुत-से बच्चे जिनके माता-पिता घूमंतू तरह का जीवन जीते हैं, जिनका कोई स्थाई घर नहीं है या वे बच्चे जो ट्रेनों में सामान बेचते हैं, झाड़ू लगाते हैं या वे बच्चे जिनके पिता किसी छोटे-मोटे अपराध में जेल चले गए हैं तथा वे बच्चे जो सुबह होते ही बोरा लेकर कूड़ा बीनने निकल जाते हैं, उन बच्चों के लिए शिक्षा और स्कूल तो एक स्वप्न जैसा है। ऐसे बच्चों को स्कूल में दाखिला दिलवाने का काम गैर-सरकारी संगठन अच्छी तरह से कर सकते हैं। एक तो उनके अभिभावकों को जागरूक करके, दूसरे उनकी दिनचर्या के अनुसार सरकार से कहकर स्कूल खुलवाकर। शिक्षा का अधिकार अधिनियम के प्रभावी क्रियान्वयन हेतु सलाह देने के लिए राज्य सलाहकर परिषद् के गठन की बात कही गई है। राज्य सलाहकार परिषद् और गैर-सरकारी संगठन मिलकर कार्य कर सकते हैं। अधिनियम में कहा गया है कि 6 से 14 वर्ष के ऐसे बच्चे जो अभी तक स्कूल में दर्ज नहीं हैं, की पहचान करना ताकि कोई भी बच्चा शिक्षा से वंचित नहीं रहे, लेकिन बहुत दुख की बात हैं कि आज भी बहुत से बच्चे स्कूल नहीं जा रहे है। ऐसे बच्चों को स्कूलों में दाखिला दिलाना चुनौती भरा कार्य है।

❑❑❑

7

सतत एवं समग्र मूल्यांकन

मिलन सिंह*

विगत कुछ वर्षों से परीक्षा-सुधार कार्यक्रम के रूप में सतत एवं समग्र मूल्यांकन का विचार शैक्षिक जगत में चर्चा का विषय रहा है। सतत एवं समग्र मूल्यांकन का प्रत्यय वस्तुतः परीक्षा सुधार के दो सिद्धांतों पर आधारित है-प्रथम, जो व्यक्ति अध्यापन कार्य करे, वही व्यक्ति मूल्यांकन भी करे तथा द्वितीय, मूल्यांकन कार्य सत्रंत में न होकर संपूर्ण सत्र के दौरान लगातार होता रहे। उक्त आलेख के माध्यम से सतत एवं समग्र मूल्यांकन को कक्षागत परिस्थितियों में कैसे अच्छे ढंग से लागू किया जा सकता है एवं इसके लागू करने में आने वाली कठिनाइयों के बारे में विस्तार से चर्चा की गई है।

वर्तमान समय में विज्ञान एवं तकनीक के उच्चतम विकास को देखते हुए विगत वर्षों से चली आ रही मूल्यांकन पद्धति में परिवर्तन करने की आवश्यकता समझी गई। मूल्यांकन एक प्रक्रिया न होकर एक ऐसी घटना मात्र बनकर रह गई थी जिसकी नींव कागज़-कलम पर आधारित सत्रीय परीक्षाएँ भर थीं। कई बार ऐसा भी पाया गया कि नवीन विचार एवं कुशल मौखिक अभिव्यक्ति के बावजूद भी छात्र एवं छात्राओं का परिणाम अपेक्षा से बहुत कम था शायद वे छात्र एवं छात्राएँ लेखन की वजह से पिछड़ रहे थे। केंद्रीय माध्यमिक शिक्षा परिषद् ने सतत एवं समग्र मूल्यांकन पद्धति को लागू करने का निर्णय किया। प्रारंभ में कुछ असमंजस की स्थिति बनी रही क्योंकि स्पष्ट दिशा-निर्देशों का अभाव था। अतः हम अध्यापकों के समक्ष एक बड़ी चुनौती आई कि सतत एवं समग्र मूल्यांकन का प्रयोग कक्षा में कैसे करेंगे? गहन सोच-विचार की आवश्यकता थी, एक समग्र मूल्यांकन परियोजना बनाने की आवश्यकता थी, क्योंकि अभी तक मूल्यांकन का आधार छात्र-छात्राओं की लिखित परीक्षा मात्र थी। मौखिक व रचनात्मक आधार नगण्य-सा था। मन के किसी कोने में यह प्रश्न भी था कि कहीं सतत एवं समग्र मूल्यांकन पद्धति महज़ औपचारिकता बनकर न रह जाए। शिक्षा विभाग द्वारा थोड़े बहुत दिशा-निर्देश हमें मिले तो मन की धुँध छँट गई। हमने छात्राओं को एक प्रयोज्य की भाँति न रखकर एक प्रयोगकर्ता के रूप में रखा तो कुछ कठिनाइयों के बाद आश्चर्यजनक

* राजकीय सर्वोदय कन्या विद्यालय, बुराड़ी, दिल्ली-110084

परिणाम भी आए। उदाहरणस्वरूप हिंदी शिक्षण के दौरान मैंने छात्राओं को मँहगाई व भ्रष्टाचार तथा ईदगाह कहानी (मुंशी प्रेमचंद) को कार्टून के माध्यम से अभिव्यक्त करने को कहा तो छात्राओं ने सुंदर कार्टून बनाने के साथ-साथ चुटीले हास्य व्यंग्य वाक्यों का प्रयोग किया। उनके विचार पढ़कर उनकी रचनात्मकता का पता चला। कुछ छात्राओं का प्रदर्शन हमारी आशाओं से कई गुना ऊपर था, उन्हें केवल दिशा-निर्देश की आवश्यकता थी, लेकिन कुछ छात्राओं से प्रत्युत्तर पाने व प्रदर्शन करने में काफी कठिनाइयाँ आई। क्योंकि अभिव्यक्तिकरण में छात्राओं की झिझक व संकोच आड़े आ रही थी। पूरी कक्षा के सामने एक शब्द बोलना भी उन्हें पहाड़ चढ़ने जैसा लग रहा था। धीरे-धीरे रचनात्मक गतिविधियों के लगातार प्रयोग से छात्राएँ रुचि लेने लगीं, उनकी झिझक खुलने लगी। अब बिना संकोच किए अपने अध्यापकों की भी हू-ब-हू नकल अभिनय द्वारा प्रदर्शित करने लगी हैं। यह सतत एवं समग्र मूल्यांकन शिक्षा पद्धति का ही परिणाम है कि हम कक्षा के प्रत्येक छात्रा के बारे में जान पाए कि कौन-सी छात्रा क्या सीखने व सोचने में कितना दक्ष हो पाई है।

सतत एवं समग्र मूल्यांकन शिक्षा प्रणाली वास्तव में छात्र-छात्राओं के संपूर्ण व्यक्तित्व के विकास में सहायक सिद्ध होगी। बशर्ते हम इसे सही तरीके से प्रयोग कर पाए तो यानि कि सकारात्मक रूप से प्रयोग करें, महज औपचारिक रूप से नहीं, तो शिक्षार्थियों को किसी संस्था में जाकर अभिव्यक्ति व साक्षात्कार के लिए अलग से प्रशिक्षण की आवश्यकता नहीं है। क्योंकि वह अपनी कक्षा रूपी प्रयोगशाला में एक प्रयोगकर्ता की भाँति अपने विचारों के अभिव्यक्तिकरण के लिए स्वतंत्र हैं। उन्हें पुस्तकीय पाठ्यक्रम से बाहर निकलने की अनुमति भी है। किसी-भी विषय पर अपने स्वतंत्र विचार संप्रेषण करने की स्वतंत्रता भी। प्रस्तुतिकरण करते-करते उसके आत्मविश्वास का स्तर बढ़ रहा है। अब धीरे-धीरे उसकी झिझक पूरी कक्षा के समक्ष कम हो रही है। वह थोड़ा-थोड़ा खुलने लगा है, क्योंकि उसे ज्ञात है कि उसकी गतिविधियाँ प्रत्येक विषय में उसके मूल्यांकन का आधार बन गई हैं। इसलिए उसे अपना सर्वोत्तम क्रियाकलाप करके दिखाना है। अभी तक पूरे वर्ष के मूल्यांकन का आधार उसकी वार्षिक परीक्षा ही थी, किंतु अब इसके विपरीत उसका रचनात्मक एवं भावात्मक मूल्यांकन भी संकलित परीक्षा के साथ समाहित हो गया है। सतत एवं समग्र मूल्यांकन शिक्षा पद्धति छात्र के ज्ञानात्मक पहलू का ही मूल्यांकन न होकर उसके संवेगात्मक व सामाजिक पक्ष का भी मूल्यांकन करती है। यह पद्धति वाँछित परिवर्तन को एक दिशा देती है। इस मूल्यांकन पद्धति में सह-शैक्षणिक तथ्यों का उतना ही महत्त्व है जितना कि शैक्षणिक तथ्यों का। शिक्षण को सफल एवं प्रभावशाली बनाने के लिए परिवर्तन एवं प्रोत्साहन का एक प्रक्रिया की भाँति प्रयोग किया गया है। सतत एवं समग्र मूल्यांकन शिक्षा पद्धति में प्रत्येक रचनात्मक गतिविधि के मूल्यांकन का आधारबिंदु है। जैसे-हिंदी शिक्षण में कविता पाठ एक गतिविधि के रूप में हमने प्रयोग किया और रचनात्मक अभिव्यक्ति का एक भाग

माना तथा हम उसके विभिन्न बिंदुओं के अंक निर्धारित कर देते हैं। अंक विभाजन निम्नवत् है- जैसे-यदि कुल अंक-10 हुए तो प्रस्तुतीकरण-03, हाव-भाव-02, लय-ताल-02, उच्चारण-02, चित्र-01। यह अध्यापक पर निर्भर करता है कि वह कितनी गतिविधियाँ करा सकता है। उसके आधार पर अंक कम या ज़्यादा भी हो सकते हैं। प्रत्येक गतिविधि के अंक विभाजन के आधार पर छात्राओं के व्यवहार को मापने में आसानी हो गई है। छात्राओं के प्रत्येक गुण का बारीकी से अध्ययन करने की क्षमता भी इसी मूल्यांकन पद्धति का परिणाम है। विभिन्न जीवन कौशलों के आधार पर सतत एवं समग्र मूल्यांकन शिक्षा पद्धति अपनी गुणवत्ता को सिद्ध करने में सहायक है।

सतत एवं समग्र मूल्यांकन शिक्षा पद्धति ने पूर्व शिक्षा पद्धति का स्थान ले लिया है। इस परिवर्तन से मन में जो द्वंद्व चल रहा है, मैंने उसे एक कविता के रूप में अभिव्यक्त करने का प्रयास किया है-

सोच रहा शिक्षक परिवार,
आओ मिलकर करें विचार।
इस नवीन शिक्षण का सार,
मूल्यांकन का क्या आधार।

सतत निरीक्षण करें निरंतर,
गतिविधियाँ नव-नव प्रयोग कर।
रचनात्मक भावात्मक स्तर,
अंक विभाजन का अधिकार।
सोच रहा शिक्षक परिवार।

सतत निरीक्षण ज्ञान पिटारी,
द्वंद्व चल रहा मन में भारी।
परिवर्तन की है तैयारी,
सपने करने हैं साकार।
सोच रहा शिक्षक परिवार।

श्रवण, पठन, लेखन, मौखिक ही,
भाषिक कौशल के अनुभाग।
अधिभाग सफल तभी हो सकता,
जब समझें भाषा का सार।
सोच रहा शिक्षक परिवार।

अभिलेखों का संचय करके,
साक्ष्य रखें हम क्यों सहेजकर।
नृत्य करा कर गीत गवाकर,
गतिविधियाँ कर लें तैयार।
सोच रहा शिक्षक परिवार।

करें बोध नव-नव अधिगम का,
रचनात्मक भावात्मक स्तर।
कर प्रयोग अब नित नव कौशल,
खोजें प्रतिभाओं का द्वार।
सोच रहा शिक्षक परिवार।

मौज कराएँ रोज़ निरंतर,
हम सब बनकर मस्त कलंदर।
गतिविधि-डमरू खूब बजाकर,
होगी अंकों की बौछार।
सोच रहा शिक्षक परिवार।

1. विद्यालय में भाषा-शिक्षण के दौरान सतत एवं समग्र मूल्यांकन शिक्षा पद्धति का प्रयोग अपनी कक्षाओं में किया और पाया कि परिचर्चा के दौरान छात्राओं ने समूह

में अपना स्थान बनाने की पूर्ण कोशिश की जिससे उनमें अपना दृष्टिकोण कुशलतापूर्वक व्यक्त करने की क्षमता विकसित हुई।

(अ) छात्राओं में तर्क करने की क्षमता का विकास होने के साथ-साथ प्रतिपक्ष का खंडन करने की क्षमता विकसित हो पाई।

(ब) इस मूल्यांकन पद्धति ने प्रत्येक छात्रा को अभिव्यक्ति का अवसर दिया है। अत: अन्य छात्राओं से स्वयं की तुलना करके स्वयं अपनी कमी को खुद पहचाना जा सका।

(स) छात्राओं में समुचित संवाद स्थापित करने व अपनी बात को संप्रेषित करने की योग्यता का विकास हुआ।

2. छात्राओं में पाठ्यपुस्तक की परिधि के बाहर सोचने की क्षमता का विकास हुआ। उदाहरण के तौर पर विद्यालय में कविता लेखन प्रतियोगिता का आयोजन हुआ जिसमें 'वृद्धावस्था सम्मान के साथ' विषय पर कविता लिखनी थी। एक छात्रा ने बड़ी ही मार्मिक कविता लिखी (क्यों आज ठोकर खा रहे हैं बुजुर्ग हमारे, आओ मिलकर हम सब सोचें-विचारें) और उसकी कविता क्षेत्रीय स्तर पर चुनी भी गई। उस छात्रा का मनोबल इतना बढ़ गया है कि प्राय: नए विषयों पर कविता लिखने लगी है।

3. छात्राओं ने कहा कि गतिविधियों व चुनौतियों को उत्साहपूर्वक स्वीकार किया व दिए गए किसी कार्य में असफल होने पर भी हताश नहीं हुई। अपितु पुन: उनमें उस कार्य को करने की प्रवृत्ति देखी गई।

4. सामूहिक गतिविधियों ने छात्राओं का तनाव काफी कम कर दिया। अब छात्राएँ तनाव की स्थिति में भी अपने समूह से अलग रहना नहीं चाहती। अच्छा कार्य करने पर प्रशंसा पाने के लिए लालायित रहती हैं चाहे वह उसके लिए तालियाँ ही क्यों न हों।

5. कठिन परिस्थितियों में छात्राओं ने अपने शिक्षक व सहपाठिनों से नि:संकोच सहायता ली। क्योंकि गतिविधियों में सभी की सहभागिता की आवश्यकता थी।

6. छात्राओं में परियोजना कार्य के अनुसार शोधपरक और प्रासंगिक सामग्री एकत्र करने की रुचि विकसित हो पाई। मैंने ग्रीष्मावकाश गृहकार्य में परियोजना कार्य के अंतर्गत आई.पी.एल. क्रिकेट विषय दिया था। छात्राओं ने आँकड़ों सहित सचित्र विवरण विभिन्न समाचार पत्रों के आधार पर दिया। कुल टीम तथा फाइनल तक पहुँचने वाली टीमों का विस्तृत वर्णन दिया। विजेता टीम पर छात्राओं ने बड़ी ही सुंदर टिप्पणियाँ की हैं। खिलाड़ियों के व्यक्तिगत कौशल की ओर भी ध्यान आकर्षित कराया व उन्हें विभिन्न उपमाओं से अलंकृत किया। छात्राओं की परियोजना को पढ़कर व देखकर उनकी क्रियात्मकता

के बारे में पता चला। यदि सतत एवं समग्र मूल्यांकन पद्धति न होती तो शायद उनकी खूबियों के बारे में हमें कभी पता न चल पाता।

7. छात्राएँ परियोजना कार्य में विभिन्न शब्दकोष, समाचार पत्र, इंटरनेट द्वारा प्राप्त सूचनाओं का प्रयोग करना स्वयं सीख रही हैं।

❑❑❑

हाल ही में, एक शिक्षिका मुझे हाशिए पर रहने वाले बच्चों के साथ अपने काम के बारे में बता रही थीं जो या तो पढ़ नहीं पाते थे, या पढ़ते नहीं थे। बात-बात में उन्होंने कहा, ''हमारे पास कक्षा में ढेरों किताबें हैं और सभी उसको इस्तेमाल करते हैं। पर वे उसे पढ़ते नहीं है। वे सिर्फ़ पन्नें पलटते हैं और उन्हें देखते हैं। मैं कैसे पढ़ने में उनकी रुचि जगाउँ? मैंने एक-दो बातें बताई जो शायद उस समय उन्हें ठीक लगीं। मुझे बाद में ये बात समझ में आई कि इन बच्चों ने शायद कभी पहले कोई किताब नहीं देखी, उनके लिए सरसरी तौर पर किताबों को देखना, पढ़ने की एक लाज़मी और आवश्यक पहली सीढ़ी थी। इससे पहले कि वे बच्चे सोचते कि कोई शब्द या शब्दों का समूह क्या कहता है उनके लिए शब्दों की सूरत से परिचित हो जाना बेहद ज़रूरी है। ठीक उसी तरह जिस प्रकार एक बच्चा जो बोलना सीख रहा है उसके लिए बात करने की आवाज़ से परिचित होना बहुत ज़रूरी है। अधिकांश बच्चे, जब वे पढ़ना शुरु करते हैं, वर्णों को देखते और उन पर गौर करते हैं। यही वे अनुभव है जिनकी खानापूर्ति वंचित बच्चों को करनी पड़ती है।

जॉन होल्ट

8

बच्चे एवं गणित का सीखना-सिखाना

सत्यवीर सिंह*
अनिल कुमार*

गणित का अध्ययन न सिर्फ़ प्रारंभिक स्तर पर अनिवार्य होता है बल्कि उच्च-प्राथमिक स्तर पर भी इसकी उपयोगिता ज्यों-की-त्यों बनी रहती है। शिक्षा का अधिकार कानून के अनुसार भी गणित के अध्ययन को कक्षा 8 तक अनिवार्य बनाया गया है। एन.सी.ई.आर.टी. द्वारा विकसित गणित का आधार पत्र कहता है कि गणित सीखने-सिखाने का लक्ष्य है दुनिया के बारे में गणित की भाषा में सोचना-सीखना और इस तरह की सोच विकसित करना जो कि ठेठ गणितीय हो। लेकिन गणित को किस प्रकार सिखाया जाए कि बच्चों को इसमें आनंद आए? इसी पर आधारित है यह लेख।

सभी बच्चे आठवीं कक्षा तक गणित पढ़ने वाले हैं, इस बात को ध्यान में रखा जाए तो स्कूली गणित शिक्षण का मुख्य उद्देश्य गणितज्ञ पैदा करना नहीं हो सकता और केवल वैज्ञानिक या इंजीनियर पैदा करने में भी मददगार नहीं हो सकता, हालाँकि इन क्षेत्रों के संदर्भ में गणित का बहुत महत्वपूर्ण और खास स्थान है। फिर स्कूली गणितीय शिक्षा का उद्देश्य क्या है?

गणित का आधार पत्र कहता है कि गणित सीखने-सिखाने का लक्ष्य है दुनिया के बारे में गणित की भाषा में सोचना-सीखना और इस तरह की सोच विकसित करना जो कि ठेठ गणितीय हो। दूसरी तरफ पिछले पाँच दशकों से देश में चल रहे पाठ्यक्रमों और पाठ्यपुस्तकों को देखने पर कुछ अलग ही बात सामने आती है। ऐसा प्रतीत होता है कि 'विश्वविद्यालयीन शिक्षा' या शायद 'आईआईटी शिक्षा' का स्कूली गणित की विषयवस्तु और शैली पर प्रभुत्व रहा है। अत: कोई आश्चर्य नहीं कि अतीत में स्कूल गए और वर्तमान में स्कूल जा रहे अधिकांश विद्यार्थियों के मन में इस विषय के लिए कोई प्यार नहीं है।

बच्चों के लिए संसार का अनुभव एक मूर्त अनुभव होता है, लेकिन इस अनुभव की अपनी कई सीमाएँ होती हैं। बच्चों में तर्क शक्ति का विकास करना गणित का एक मुख्य कार्य है ताकि वे उस दुनिया की कल्पना भी कर सकें जिससे उनका सीधा जुड़ाव नहीं रहा है। अपने आरंभिक जीवन में बच्चे गणित के ज़रिए मूर्त

* *प्राचार्य*, एस. एन. आई. कॉलेज, पिलाना, बागपत
** *वरिष्ठ प्रवक्ता*, डायट, एस.सी.ई.आर.टी.,दिलशाद गार्डन, नयी दिल्ली

वस्तुओं को तो समझते ही हैं साथ ही वे ऐसी तर्क प्रक्रियाओं का भी विकास कर पाते हैं जिससे वे अमूर्त, अपरिचित और अज्ञात का आकलन कर पाएँ। आकलन की सटीकता की वजह से गणित का अध्ययन ज्ञान-विज्ञान के कई क्षेत्रों में एक आधार की तरह काम करता है। परिणामस्वरूप गणित का अध्ययन न सिर्फ प्रारंभिक स्तर पर अनिवार्य होता है बल्कि उच्च-प्राथमिक स्तर पर भी इसकी उपयोगिता ज्यों-की-त्यों बनी रहती है। शिक्षा का अधिकार कानून के अनुसार भी गणित के अध्ययन को कक्षा 8 तक अनिवार्य बनाया गया है।

बच्चों के विकास में, खासतौर से अपने आस-पास की दुनिया को समझने के लिए गणित की भूमिका काफी महत्वपूर्ण हो जाती है। गणितीय ज्ञान के ज़रिये बच्चे न सिर्फ़ अपने आस-पास घट रही घटनाओं को तार्किक रूप से समझ पाते हैं, बल्कि इसके ज़रिये दूरदृष्टि की क्षमता को विकसित करते हैं। गणित का ज्ञान बच्चों को इसका अवसर देता है कि वे अपने परिवेश को सापेक्षिक तौर पर समझ सकें। एक समय के बाद जब बच्चों का अनुभव जगत बढ़ता है तो उन्हें यह ज़रूरत महसूस होती है कि वे इन अनुभवों में एक समरूपता लाएँ। इसके लिए उन्हें विचार करने व सोचने की कुछ विशिष्ट पद्धतियों की ज़रूरत महसूस होती है। ताकि वे उस खाली जगह को भर सकें जिसका कि वे सीधा या प्रत्यक्ष अनुमान नहीं कर पाते हैं। ऐसी स्थिति में उन्हें 'अमूर्त' कल्पनाओं का सहारा लेना पड़ता है। गणित बच्चों को अमूर्त कल्पना करने के औज़ार प्रदान करता है। इसलिए प्रारंभिक स्तर पर गणित शिक्षण की अनिवार्यता है। गणित से औपचारिक रूप से परिचित होने के काफी पहले से ही बच्चे गणित तर्क प्रणाली का इस्तेमाल करना शुरू कर देते हैं। शिक्षाशास्त्रियों के बीच अभी भी यह रहस्य का विषय बना हुआ है कि बच्चे ठीक-ठीक कब गणितीय संकल्पनाओं का इस्तेमाल करना शुरू करते हैं। दो एवं चार वर्ष की उम्र के बीच के बच्चे 'छोटा-बड़ा' या 'पास-दूर' जैसी संख्यापूर्ण संकल्पनाओं का इस्तेमाल करना शुरू कर देते हैं। साथ ही इस स्तर पर वे मोटे तौर पर 'कम और ज़्यादा' जैसी अवधारणाओं से भी परिचित हो जाते हैं।

बच्चों के अनुभव में गणित सबसे पहले कब शामिल होता है, इसका ठीक-ठीक आकलन तो न तो शिक्षाशास्त्री कर पाते हैं और न ही मनोवैज्ञानिक। पर इतना तय है कि गणित का अनुभव जगत भाषा के अनुभव जगत के साथ शुरू होता है, इसकी औपचारिक जानकारी हमें बच्चों के अवलोकन से प्राप्त होती है। स्कूल में बच्चों का गणित से पहला परिचय अंकों के माध्यम से होता है। अंक उसे शब्द से अलग प्रतीत होते हैं और उसका अनुभव जगत अंकों को अलग तरीके से ग्रहण करता है। स्कूली गणित की किताबें बच्चों को खास-तौर से 'आकर्षित' करती हैं क्योंकि इन किताबों में उन्हें अन्य किताबों से अलग तरह के संकेत और भाषायी-व्यवस्था नज़र आती है। स्कूल में गणित को जिस 'तरीके' से बच्चों से परिचित करवाया जाता है वह देर-सबेर उनके लिए कुछ बुनियादी कठिनाइयाँ खड़ी करती हैं। परिणामस्वरूप गणित

के ज्ञान के चलते जो खूबियाँ उनके भीतर होनी चाहिए उनसे वे वंचित रह जाते हैं।

गणित का ज्ञान अपनी वैधता के लिए जिस तरह की तर्क प्रक्रिया से होकर गुज़रता है उसे किसी अन्य तर्क प्रक्रिया से चुनौती नहीं दी जा सकती। गणित के अध्ययन-अध्यापन के दौरान हम जिस स्तर की सटीकता को लेकर आगे बढ़ते हैं वैसी सटीकता किसी भी अन्य विषय में नहीं होती। इसलिए गणितीय तर्क प्रक्रियाएँ तो अन्य विषयों की वैधता का आधार बनती रहीं, लेकिन मानवीय ज्ञान-शाखाओं में ऐसी कोई अन्य ज्ञान-शाखा नहीं है जो गणितीय ज्ञान की सटीकता की कसौटी बने। इसलिए सटीकता के इस 'पैमाने' को हम बुनियादी मानक के रूप में स्वीकार करते रहे हैं। सटीकता की यह प्रकृति गणितीय संख्याओं, चरों इत्यादि में तो दिखती ही है साथ ही गणितीय संक्रियाओं मसलन गुणा, भाग, घटाव, जोड़ या फिर अनुपातिक संबंधों में भी ऐसी ही सटीकता देखने को मिलती है।

गणित पढ़ाने का तरीका क्या हो? बच्चे गणित की किताबों में जो कुछ पढ़ते हैं उन संकल्पनाओं और अवधारणाओं से उनका सामना ज़िंदगी में नहीं होता। '5' जिस संकल्पना को व्यक्त करता है उसे बच्चे ज़िंदगी में कहीं नहीं देखते। 'पाँच पेंसिल' और 'पाँच' ये दोनों ही दो चीज़ें हैं। बच्चे जिंदगी में पाँच कलम, पाँच खेत इत्यादि तो देखते हैं, लेकिन 'पाँच' उन्हें कहीं नहीं दिखता। इसलिए गणित पढ़ाते समय यथासंभव बच्चों की अमूर्तता के स्तर में विकास करते रहना चाहिए। यह ध्यान रखना होगा कि अमूर्तता के एक स्तर से दूसरे स्तर तक का फासला इतना कम हो कि बच्चे अपनी कोशिशों से उसे खुद पाट सकें। दो संकल्पनाओं की अमूर्तता के फासले को कम करने के लिए शिक्षक मूर्त उदाहरणों का सहारा लेता है। इस समझ को सामने रखें तो दो बातें स्पष्ट रूप में सामने आती हैं। पहली यह कि गणित अध्यापन से हम बच्चों को अमूर्त चिंतन सिखा रहे होते हैं और दूसरी यह कि अमूर्तता के स्तर को ध्यान में रखकर बच्चों को सिखायी जाने वाली संकल्पनाओं व अवधारणाओं को सही क्रम में तैयार किया जाना चाहिए। अमूर्त संकल्पनाओं को समझाने के लिए प्रारंभिक तौर पर मूर्त उदाहरणों का सहारा लिया जा सकता है पर गणितीय ज्ञान में विकास की कसौटी अमूर्त चिंतन ही है। मूर्त उदाहरणों के चयन में यथासंभव अलग-अलग तरह के उदाहरण रखें ताकि बच्चे गणितीय दृष्टिकोण से संक्रियाओं, संकल्पनाओं और अवधारणाओं के अमूर्तीकरण या सामान्यीकरण की ओर तेजी से बढ़ें और गणितीय गणनाओं में अभ्यस्त हो सकें। गणितीय गणनाओं में अभ्यस्त होने का अर्थ अवधारणाओं को समझने से है न कि सवाल हल करने से।

उदाहरण रूप में बच्चे 432 + 432 +432 + 432 + 432 को 5 से भाग देने में पहले 432 को 5 बार जोड़ते है फिर भाग करते हैं बजाए बार-बार जोड़ को गुणा के रूप में लिखकर भाग करने के। इससे स्पष्ट होता है कि बच्चे मशीन रूप में सवालों के हल तो जानते हैं, परंतु उनको अवधारणाएँ स्पष्ट नहीं है।

'गणित का सीखना और सिखाना' में संक्रियाओं को स्वचालित तरीके से करने व यंत्रवत् तरीके से करने में फर्क करते हुए शिक्षकों को प्रयास करना चाहिए कि बच्चे संक्रियाएँ

स्वचालित तरीके से करने लगें। उन्हें हर नियम लगाने से पहले ठहर कर सोचना पड़े। पर यह भी ध्यान रखना चाहिए कि वे संक्रियाओं को यंत्र-वत न करें। स्वचालित रूप से संक्रियाएँ करने में और यंत्रवत करने में फ़र्क यह है कि स्वचालित रूप से करने वाला व्यक्ति कभी भी अर्थ से कटता नहीं। वह जो काम कर रहा है, उसका मतलब बता सकता है जबकि यंत्रवत करने वाला चाहे सही कर सके, पर उसके अर्थ एवं कारणों की व्याख्या नहीं कर पाता।

बच्चों को अपने अर्थ गढ़ने का मौका दिया जाना चाहिए, ताकि वे सीखी गई अवधारणाओं का अनुप्रयोग कर सकें, अपने मतलब निकाल सकें। उदाहरण रूप में भिन्न सीखने और सिखाने की प्रक्रिया के दौरान चित्र बनाकर आधा बताने के बजाए यदि पूछा जाए कि किसी एक वस्तु के दो बराबर भाग कितने प्रकार से किए जा सकते हैं। इससे बच्चों में वस्तुनिष्ठता, तार्किक दृष्टिकोण, चितंन, वैज्ञानिक दृष्टिकोण जैसी योग्यताओं का सृजन किया जा सकता है। परिणामों, आकारों तथा आकृतियों का प्रयोग करके समस्याओं के समाधान खोजना गणित का एक अच्छा उपयोग है। उदाहरण के लिए चौथी कक्षा के बच्चों से पूछा जा सकता है कि इस चित्र को दो बराबर भागों में कितने तरह से बाँटा जा सकता है?

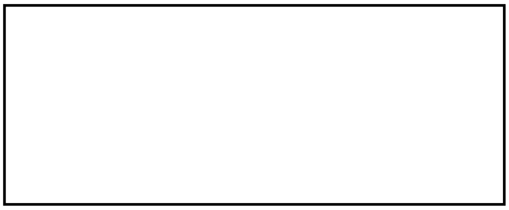

बच्चा यदि आधा की अवधारणा से परिचित है तो वह चित्र को दो बराबर भागों में बाँटने की युक्तियों को तलाश करेगा। इस तलाश करने की प्रक्रिया में वह तार्किक सोच, चिंतन तथा सटीकता का इस्तेमाल करेगा।

हो सकता है कि कोई बच्चा केवल एक तरीका ही बता पाए–

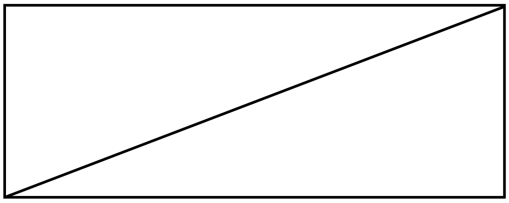

या हो सकता है कि कोई बच्चा दो तरीके बता दे, जैसे –

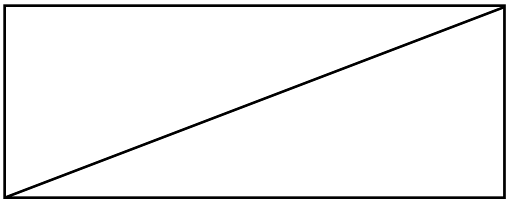

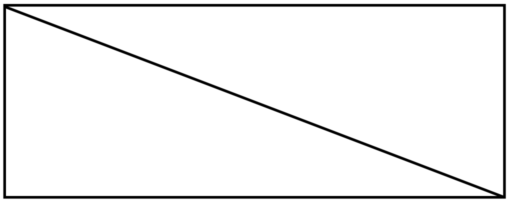

हो सकता है कि कोई बच्चा तीन तरीके बता दे, जैसे –

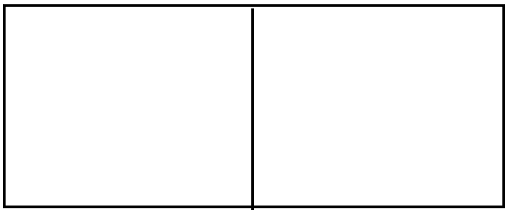

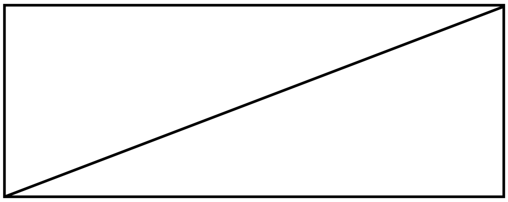

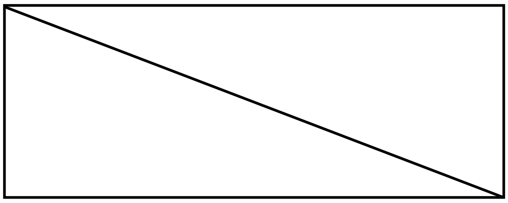

अवधारणा की समझ की अभाव में हो सकता है कि कोई बच्चा यह तरीके बता दे, जैसे –

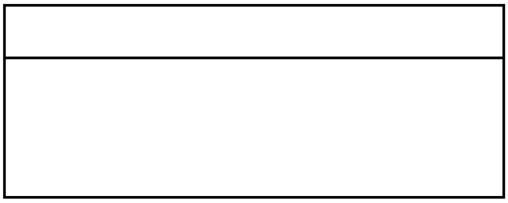

हो सकता है कि कोई प्रतिभाशाली बच्चा कई तरीके बता दे, जैसे –

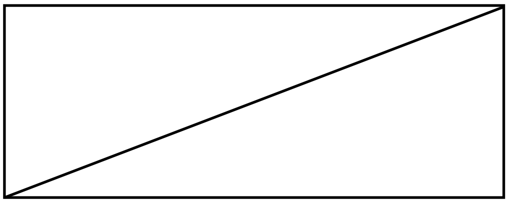

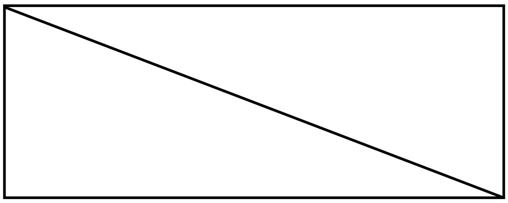

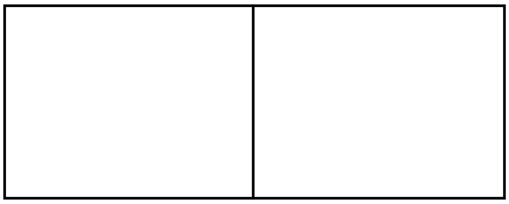

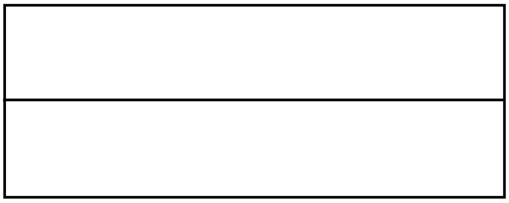

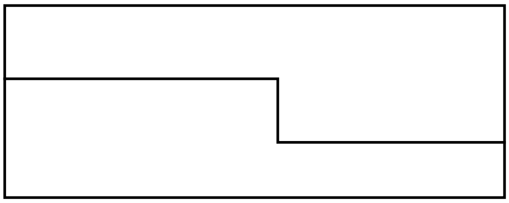

उपरोक्त क्रियाकलाप को कागज़ के आयताकार टुकड़े के साथ भी कराया जा सकता है। तब हम बच्चे के प्रभावकारी संप्रेषण का आकलन भी कर सकते हैं।

आइए गणितीय संप्रेषण को विकसित करने वाली एक समस्या पर विचार करें –

समस्या $3 + 4 = ?$ को शब्दों के माध्यम से प्रस्तुत करना।

- एक विद्यार्थी सोचकर कहता है कि मेरे पास 3 पेंसिलें हैं तथा रीना के पास 4 पेंसिलें हैं। तो हम दोनों के पास कुल कितनी पेंसिलें हैं ?
- दूसरा विद्यार्थी सोचकर कहता है कि मेरे पास 3 लाल गेंदें हैं तथा सुधा के पास

4 नीली गेंदें हैं। तो हम दोनों के पास कुल कितनी गेंदें हैं।

अब आपकी कक्षा में इन समस्याओं के विभिन्न तरीके मिल सकते हैं। इसी प्रकार अन्य समस्याओं को भी गणितीय संप्रेषण को विकसित करने वाली एक समस्या के रूप में प्रयोग कर सकते हैं। गणित पढ़ाने के लिए हमें गणित के ही तरीके को इस्तेमाल करना होगा। गणित में किसी भी सवाल को हल करने के लिए हम दो मुख्य बातों को देखते हैं कि 'क्या कुछ दिया हुआ है' और 'क्या हासिल करना है'। दरअसल, यही चीज़ हमें गणित शिक्षण के समय भी ध्यान रखनी चाहिए। सबसे पहले यह देखने की ज़रूरत होती है कि बच्चे क्या जानते हैं और उसके बाद उन्हें हम क्या सिखाना चाहते हैं? इसी प्रक्रिया में बच्चे गणितीय ज्ञान की रचना करते हैं। राष्ट्रीय पाठ्यचर्या रूपरेखा 2005 तथा गणित के आधार पत्र में गणितीय पाठ्यचर्या रूपरेखा हेतु स्पष्ट दिशा-निर्देश दिए गए हैं। हमें इन उद्देश्यों को ध्यान में रखते हुए शिक्षण-सामग्री तैयार करनी चाहिए। हमें सृजनात्मक तरीकों से गणनाएँ करना सिखाना होगा, ताकि इन कौशलों को निखारा जा सके और आगे बढ़ाया जा सके। चूँकि इनका इस्तेमाल रोज़मर्रा की व्यावहारिक परिस्थितियों में किया जाएगा अत: इन कौशलों का मूल्यांकन ऐसे परियोजना कार्यों, गतिविधियों और खेलों के द्वारा किया जाना चाहिए जो कि जीवन से जुड़ी परिस्थितियों के अनुरूप हों, बच्चों के स्थानीय परिवेश से जुड़े हों न कि तनावपूर्ण परीक्षाओं के द्वारा। चूँकि गणित अकसर अपने आस-पास के अनुभवों से ही और विकसित होता जाता है अत: अवधारणाओं को सृजनात्मकता के आलोक में फिर से देखा जाना चाहिए। पूरा पाठ्यक्रम इस दर्शन से भरा हुआ होना चाहिए कि गणित 'नियमित संरचनाओं की पहचान का विज्ञान' है। हमें इस बात का भी खास ख्याल रखना ज़रूरी है कि संरचना की पहचान का आकलन किस तरह होता है। ऐसे बहुत से बच्चे हैं जो पारंपरिक पाठ्यपुस्तकीय गणित में अच्छे प्रतीत नहीं होते पर उनकी परिवेश की समझ बहुत गहरी होती है और वे संरचनाओं को पहचानने में तथा पहेलियों को सुलझाने में काफी दक्ष होते हैं। बच्चों को अर्थपूर्ण सवालों को हल करने का पर्याप्त अनुभव होना चाहिए और एक अंतर्दृष्टि पाने के रोमाँच का अनुभव भी मिलना चाहिए। इन सब ज़रूरतों को पूरा करने वाली पहले से तैयार कोई भी सामग्री बाज़ार में उपलब्ध नहीं है। हम अलग से संसाधनों को निर्धारित करके इस तरह की सामग्री की रचना करें या कम से कम सुसंगत ढंग से संग्रहीत करें, और शिक्षकों को प्रशिक्षित करें ताकि वे उसका और बेहतर ढंग से इस्तेमाल कर सकें। कक्षा के स्तर पर यह बेहद ज़रूरी है कि शिक्षक वास्तविक परिस्थितियों में सीखने-सिखाने का वातावरण पैदा करे। कक्षा को ऐसी जगह बनाने के लिए शिक्षक और छात्रों के बीच विश्वास और प्रेम का संबंध होना चाहिए। शिक्षक को भी गणित शिक्षण करने में बहुत आनंद आना चाहिए तभी उसके छात्र प्रेरित महसूस करेंगे। इससे भी ज़्यादा ज़रूरी है कि उसे बच्चों की इस बात को समझने में मदद करना चाहिए कि उनके डर क्या हैं?

एक और अनिवार्य बात गणित शिक्षा के इस स्वरूप के लिए समझना ज़रूरी है कि बच्चों में अमूर्तता के स्तर में लगातार बदलाव होता है। बच्चे जैसे-जैसे बड़े होते हैं वैसे-वैसे ही उनमें अमूर्त रूप से सोचने का विकास होता है। 12 से 14 वर्ष की अवस्था एक ऐसी अवस्था होती है जब तक यह विकास पूरा हो जाता है। इसलिए गणित पढ़ाने की व्यवस्था ऐसी होनी चाहिए कि वह धीरे-धीरे अमूर्त संकल्पनाओं की ओर बढ़ें। यह ध्यान रखना ज़रूरी है कि गणित शिक्षण में मूर्त वस्तुओं का इस्तेमाल हम सिर्फ इसलिए कर रहे होते हैं, ताकि बच्चे अमूर्त संकल्पनाओं और अमूर्त चिंतन प्रक्रिया तक पहुँच सकें।

अंततः हमें यह ध्यान रखना होगा कि गणित की एक भाषा होती है जिसमें अंक, चर और ज्यामिती आकृतियाँ इत्यादि शामिल होते हैं। इसका एक व्याकरण होता है जिसमें जोड़, घटाव, गुणा, भाग इत्यादि शामिल होते हैं। बच्चे ज्यों-ज्यों गणित की भाषा और व्याकरण से परिचित होते जाएँगे, वैसे-वैसे उनके लिए गणित आसान होता जाएगा।

❑❑❑

फ़ील्ड विज़िट के दौरान पठन कौशल से संबंधित कुछ अनुभव

रौमिला सोनी*

प्राथमिक शिक्षा की स्थिति का खराब होना असमंजस की बात नहीं है। प्राथमिक स्तर पर बच्चों के स्कूल छोड़ देने का मुख्य कारण उनकी पठन योग्यता का न होना है। प्राथमिक स्कूल अगर बच्चों को स्कूलों में रोक नहीं पाते, बच्चों को साक्षर बनाने में असफ़ल रहते हैं तो इसके लिए हमारे अपने प्राथमिक स्कूलों की शिक्षा पद्धति तथा पूर्व-प्राथमिक शिक्षा की ओर ध्यान न देना ही इस समस्या का मूल कारण हो सकता है। बच्चों में तीसरी कक्षा में आने पर भी पठन योग्यता का न होना प्राथमिक शिक्षा की खराब स्थिति की ओर इंगित करता है। इसके लिए मुख्य रूप से ज़िम्मेदार हमारी शिक्षा प्रणाली है।

वर्ष 2012 के दौरान राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद् (एन.सी.ई.आर.टी) की तरफ़ से यह तय किया गया कि राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा–2005 (एन.सी.एफ.–2005) पर आधारित पाठ्यपुस्तकों को भली प्रकार से जाँचने–परखने व उनके सार्थक उपयोग की जानकारी प्राप्त करने के लिए एन.सी.ई.आर.टी. का प्रत्येक संकाय सदस्य कम–से–कम तीन महीनों के लिए किसी भी विद्यालय में जाकर खुद विद्यार्थियों को पढ़ाए तथा अप्रत्यक्ष रूप से पुस्तकों के विषय में शिक्षकों तथा विद्यार्थियों की प्रतिक्रिया प्राप्त करें।

इसी संदर्भ में मैंने एक प्राथमिक विद्यालय को चुना और तीसरी कक्षा के बच्चों को 'पर्यावरण अध्ययन' विषय पढ़ाया। इस दौरान विद्यालय के संबंध में मेरे कुछ संस्मरण इस प्रकार हैं–

तीसरी कक्षा में दाखिल होते ही मैंने देखा कि बहुत से बच्चों का ध्यान उनकी पाठ्यपुस्तक की तरफ नहीं था। शिक्षिका ने एक बालिका को खड़ा कर उसे पाठ पढ़ने को कहा और बाकी बच्चे उस बालिका के पीछे पंक्ति दोहराने लगे। रेशमा को पढ़ने में कई जगह परेशानी हो रही थी, कई जगह तो बिना मात्रा के चार अक्षर के शब्द भी बोल नहीं पा रही थी। शिक्षिका उसे ऐसे शब्दों को बोल कर बता रही थी। मुझे बताया गया कि रेशमा समूची कक्षा में सबसे अच्छा पढ़ने का कौशल रखती थी।

* *असिस्टेंट प्रोफ़ेसर*, प्रारंभिक शिक्षा विभाग, एन.सी.ई.आर.टी., नयी दिल्ली–110016

पहला दिन था, मैं असमंजस में पड़ गई, अगर रेशमा की पठन योग्यता यह थी तो अन्य बच्चों की कैसी होगी? रेशमा तीसरी कक्षा की छात्रा थी और शब्दों को अटक-अटक कर जोड़-जोड़ कर पढ़ती थी। राधा, सुधा, शबाना और कंचन भी इसी तरह पढ़ने की कोशिश करती थीं। ज़्यादातर अन्य बच्चे केवल किताब की तरफ आँखें गढ़ाए, वाक्यों को दोहराते रहते थे, उन्हें यह पता ही नहीं चलता था कि रेशमा कौन-सी पंक्ति या कौन-सा पैरा पढ़ रही है। पूरी कक्षा में केवल एक दोहराने का-सा शोर सुनाई देता था। कुछ बच्चे आगे आकर रेशमा की तरह पढ़ना भी चाहते थे, किंतु कुछ वाक्य या शब्दों के बाद अटक जाते थे। और कुछ बच्चे तो प्रत्येक शब्द पर रुककर शिक्षिका से पूछते थे, "मैडम यह क्या लिखा है?" दो-तीन दिन गुज़रने पर मैंने पाया कि अधिक बच्चे श्यामपट्ट से उतारने में, लिखने में तो सक्षम हैं, किंतु वे बिना समझे उतारते हैं। इनमें से कुछ बच्चे ब्लैकबोर्ड से उतारने में भी मात्रा की गलतियाँ करते थे। किंतु सबको लिखने में मज़ा बहुत आता था। तीसरी कक्षा की सरिता अक्षर-अक्षर को जोड़ कर शब्द बनाती थी। सुधा शब्दों को जोड़ कर वाक्य बनाती थी। कई बच्चे शब्दों को अक्षरों में और वाक्यों को शब्दों में तोड़ते हुए पढ़ते थे। दुर्भाग्य से ऐसा करने वाले बच्चों की संख्या बहुत अधिक थी।

गौर करने वाली बात यह है कि बच्चे पिछली कक्षाओं से ही बिना पठन कौशल के आ गए थे क्योंकि वे पहली कक्षा की किताब को भी कठिनाई से पढ़ पाते थे और बहुत से बच्चे तो वह भी नहीं कर पाते थे। इनमें से कुछ बच्चों को जो पढ़ने में रुचि दिखाते थे, अँग्रेजी पढ़ने का बड़ा चाव था। वे मुझसे अकसर कहा करते थे, "मैडम जी इंगलिश में बोलना सिखाओ।" बच्चों की इस ललक को देख मैंने उनको छोटे-छोटे वाक्य अँग्रेजी में बोलने सिखाए और वे बड़ी उत्सुकता से अँग्रेजी की कक्षा का इंतज़ार करते थे।

प्रतिदिन मैं घर आने के पश्चात् यह सोचने पर मजबूर हो जाती थी कि ऐसा क्या करूँ कि इन बच्चों को तीसरी कक्षा में धाराप्रवाह पढ़ना सिखा पाऊँ, हालाँकि मैं अध्ययन की कक्षा लेती थी। यहाँ मेरा अपना पूर्व-प्राथमिक शिक्षा का अनुभव बहुत काम आया। मुझे पता था कि बच्चों को ध्वनि विभेदीकरण तथा दृश्य विभेदीकरण के कौशल संबंधित क्रियाकलाप पहली कक्षा या उससे भी पहले अर्थात् पूर्व-प्राथमिक शिक्षा केंद्र में नहीं कराए गए। बच्चों को एक प्रिंट समृद्ध वातावरण नहीं मिला, जिससे उन्हें प्रारंभिक साक्षरता (emergent literacy) का मौका मिले।

आज इन बच्चों को प्रारंभिक शिक्षा स्तर पर जब पठन कौशल में कमज़ोर देखती हूँ तो पूर्व प्राथमिक का महत्त्व और भी बढ़ जाता है। जब तक हम बच्चों को ई.सी.ई. स्तर पर पढ़ने की तथा लिखने की तैयारी के भरपूर अवसर नहीं देते, तब तक हम अपने इन बच्चों को प्राथमिक शाला में पढ़ने से विमुख होते देखते रहेंगे।

कई अध्ययनों के अनुसार गरीब और आर्थिक रूप से कमज़ोर माता-पिता अपने बच्चों को स्कूल नहीं भेज पाते, वे उन्हें काम पर भेज

देते हैं। फिर शिक्षा का अधिकार कानून-2009 लागू होने के कारण बच्चों का दाखिला तो हो जाता है, लेकिन स्कूल बच्चों का आधार तथा उन्हें पढ़ने लिखने में निपुण नहीं बना पा रहा है, इस कारण बच्चे स्कूल में टिक नहीं पा रहे हैं। 14 साल तक के आयु के बच्चों के लिए शिक्षा मुफ्त होने के कारण बच्चे स्कूल तो आने लगे किंतु बच्चों में साक्षरता फिर भी नहीं आ रही और बच्चों का ठहराव स्कूल में नहीं हो पा रहा।

सर्व शिक्षा अभियान के अंतर्गत बच्चों को स्कूल में लाने तथा बनाए रखने के लिए अनेक योजनाएँ चलाई गईं, जैसे-मिड-डे-मील, मुफ्त यूनीफॉर्म आदि। बच्चे मिड-डे-मील के आकर्षण में स्कूल आते भी हैं किंतु फिर भी वे पठन कौशल में पीछे हैं। जो बच्चे पहली कक्षा से पढ़कर तीसरी कक्षा में आए हैं, वे भी भली-भाँति पढ़ना नहीं जानते या पठन कौशल में निपुण नहीं हैं।

बच्चों के पढ़ने व सीखने का कारण हम अभिभावकों का केवल गरीब होना नहीं बता सकते। कुछ बच्चे जो केवल स्कूल में वर्दी के पैसे बँटने पर आते हैं, तत्पश्चात् कुछ दिन आने के बाद फिर नहीं आते। इन बच्चों के स्कूल न आने का कारण क्या हो सकता है, यह निश्चय ही जानने की आवश्यकता है। किंतु जो बच्चे नियमित रूप से आ रहे हैं, रुकते भी हैं, पाठ की पंक्तियों को दोहरा रहें हैं, श्यामपटट् से ज्यों-का-त्यों उतार रहे हैं, वे आखिर सही रूप से साक्षर क्यों नहीं हैं?

फील्ड विज़िट के दौरान मैंने यह पाया कि मिड डे मील में भोजन अच्छा और साफ-सुथरा आता है। बहुत से बच्चे ऐसे थे जो अपना भोजन घर से लाते थे। उन्हें मिड-डे-मील का आकर्षण नहीं था। वे स्कूल में पढ़ने व सीखने आते थे। उन्हें अँग्रेज़ी सीखने का चाव था। उन्हें अपने साथियों के साथ खेलने में मज़ा आता था। अक्सर ये बच्चे मुझसे कहा करते थे, ''मैडम आप ही पढ़ाया करो'', क्योंकि मैं अक्सर उन्हें पाठ पढ़ाने से पूर्व, मध्य में और बाद में पाठ संबंधित कुछ क्रियाकलाप कराया करती थी, तो वे पढ़ने मे रुचि लेते थे। कुछ दिन पश्चात् मुझे नीता ने कहा, ''मैडम आप यहीं रहना। आप हमारी पुरानी टीचर जैसे हो, वे भी हमें बहुत अच्छे से पढ़ाती थीं।'' आरती जो पढ़ने में रुचि रखती थी, बोली, ''मैडम आप हमें पढ़ाते-पढ़ाते खेल भी कराते हो, हमें बहुत मज़ा आता है और समझ भी आता है''। कहने का तात्पर्य यह है कि क्यूँ हमारे स्कूल सभी बच्चों को साक्षर बनाने में सफल नहीं हो पाते? अँग्रेजी तो दूर की बात है, क्यूँ ये बच्चे अपनी मातृभाषा में भी नहीं पढ़ पाते हैं?

आखिर क्यों बच्चे पढ़ नहीं पाते, क्यूँ उन्हें कठिनाई होती है। प्राथमिक शिक्षा की स्थिति इतनी खराब क्यों है? अगर तीसरी कक्षा के बच्चों को पहली-दूसरी कक्षा की किताबें पढ़ने में दिक्कत आ रही है तो इसके लिए शुरू में दी गई शिक्षा और स्कूल पूर्व तैयारी की बहुत बड़ी ज़िम्मेदारी है। हो सकता है कि शिक्षण पद्धति ही बच्चों की पढ़ाई में रुचि न लेने का मूल कारण हो।

अपने अनुभवों से मैं यह कह सकती हूँ कि कहीं-न-कहीं प्राथमिक स्कूल की शिक्षण पद्धति, मूलभूत आवश्यकताएँ, जैसे- डिस्प्ले बोर्ड, स्वच्छता व सफाई, कक्षा में पर्याप्त जगह का होना, अधिगम सामग्री, आदि मुख्य रूप से ज़िम्मेदार हैं। पढ़ाने के प्रति उनके शिक्षकों के रवैये तथा लगाव को नकारा नहीं जा सकता।

कुछ सवाल जो मेरे ज़ेहन में अकसर उठते हैं- ''क्या हमारे यहाँ के प्राथमिक स्कूल बच्चों को स्कूल में रखने के लिए तैयार हैं? क्या प्राथमिक स्कूलों के साथ पूर्व-प्राथमिक शिक्षा केंद्र होता है?''

''क्या पूर्व-प्राथमिक शिक्षा केंद्र व प्राथमिक शिक्षा के तरीकों में संबंध होता है?'' क्या पूर्व-प्राथमिक शिक्षा केंद्र बच्चों को प्राथमिक शिक्षा के लिए तैयार करता है या बच्चे केवल केंद्र में आकर कुछ कविता, व गीत गा लेते हैं या इसके अलावा भी कुछ स्कूल पूर्व तैयारी संबंधित क्रियाकलाप करते हैं? ''क्या नर्सरी टीचर्स के रिफ्रेशर कोर्स या ट्रेंनिग में कक्षा एक और दूसरी के शिक्षक भी होते हैं?'' ''क्या स्कूल बच्चों को पर्याप्त मात्रा में खेल सामग्री देता है? जिससे बच्चों में समस्याओं को हल करने का कौशल विकसित हो सके?'' ''क्या बच्चों की प्रारंभिक साक्षरता के लिए स्कूल प्रत्येक कक्षा में प्रिंट-समृद्ध वातावरण देता है?'' ''क्या शिक्षक बच्चों को रटन प्रवृत्ति के बाहर निकाल कर उन्हें आपस में विचार-विमर्श के अवसर देते हैं?'' पढ़ना सीखने के लिए अधिकतर आज भी सरकारी स्कूलों में वर्णमाला लिखना, उनके नामों को जानना, उसका पुस्तक या श्यामपट्ट से उतारना यही चलन है।

डिस्पले के नाम पर कक्षा की दीवारों पर शिक्षक प्रतिदिन फल, वाहन, पक्षी आदि संबंधित चार्ट इत्यादि अपनी अलमारी से निकाल कर टाँग देती थी और स्कूल की सुबह की शिफ्ट समाप्त हो जाने पर बच्चे उसे पुनः अलमारी में वापिस रख देते थे क्योंकि दोपहर में लड़कों का स्कूल लगता था और यह दलील दी जाती थी कि दूसरी शिफ्ट के बच्चे सभी प्रदर्शित (डिस्पले) सामग्री खराब कर देते हैं, या फाड़ देते हैं। दो शिफ्ट में स्कूल जहाँ भी चल रहे हैं वहाँ दीवारों का वीरान और रंगहीन होना बहुत बड़ा कारण है।

मैंने यह भी पाया कि अगर 35 बच्चों का नामांकन है तो कक्षा की प्रतिदिन की हाज़िरी 25-26 के करीब रहती थी। बच्चों के अनुपस्थित होने के कारणों में से उनके ऊपर घर के काम का दबाव, बीमार हो जाना, छोटे भाई-बहन की देखभाल करना, गाँव चले जाना, स्कूल की पढ़ाई में रुचि न होना तथा पीछे से ही बिना स्कूल पूर्व तैयारी के दाखिला होना और निरंतर उसी प्रकार कक्षा-दर-कक्षा बढ़ते जाना। इनमें से मुख्य कारण जो मुझे स्कूल में रह कर फील्ड विज़िट के दौरान समझ आया, वह था गुणवत्ता का अभाव। पूर्व-प्राथमिक शिक्षण केंद्र में जो बच्चे हैं वे क्या सीख रहे हैं और सबसे बड़ी बात वे कैसे सीख रहे हैं, इसका बहुत महत्त्व है क्योंकि यह पूर्व तैयारी ही प्राथमिक शिक्षा को सहज और सरल बना देती है।

वर्तमान में स्थिति यह है कि शिक्षा का अधिकार कानून लागू होने के कारण (जिसमें हर बच्चे को शिक्षा का अधिकार है), स्कूल समुदाय के हर बच्चे का दाखिला कर लेते हैं, किंतु उन्हें शिक्षा में गुणवत्ता नहीं दे पाते। क्या भाषा के कौशलों से संबंधित क्रियाकलाप जो पढ़ने की पूर्व तैयारी की नींव डालते हैं, बच्चों को कराए जाते हैं? क्या बच्चों को दृष्टि विभेदीकरण, ध्वनि विभेदीकरण, क्रमानुसार लगाना, बाएँ से दाएँ की दिशा में काम कराना आदि कौशलों का विकास करने के लिए गतिविधियाँ करवाई जाती हैं उन्हें, इनके अवसर तथा अनुभव दिए जाते हैं?

एक कारण तो हुआ पठन कौशल का न होना, दूसरा कक्षा की दीवारों पर संबंधित सामग्री के प्रदर्शन का न होना और जैसा कि पहले भी बात की गई कि बच्चों के पठन कौशल के विकास के लिए यह आवश्यक है कि हम उन्हें एक प्रिंट समृद्ध वातावरण दें। इस बात की गंभीरता शिक्षक जितनी जल्दी समझ लें यह बच्चों के लिए अच्छा होगा।

स्कूल में सफलता के लिए पढ़ना-लिखना मुख्य रूप से बुनियादी कौशल है जिस पर ध्यान देना आज शिक्षक की ज़िम्मेदारी है। शिक्षकों को चाहिए कि वे पढ़ने की प्रक्रिया के तरीकों को जानें व समझें, अन्यथा प्राथमिक स्कूलों में बच्चे बुनियादी साक्षरता लिए बिना स्कूल से निकल जाएँगे।

जिन प्राथमिक स्कूलों में ई.सी.ई. केंद्र नहीं है, वहाँ शिक्षिकाओं को चाहिए कि बच्चों को कक्षा में दाखिले के बाद या पहले कम-से-कम 1½ महीने का 'स्कूल पूर्व तैयारी' कार्यक्रम चलाए जिसके अंतर्गत बच्चों को निम्नलिखित कार्य करने चाहिए-

- सुनने व बोलने के कौशल संबंधित क्रियाएँ
- अक्षरों का मिलान, पहचान व उनके नाम
- अक्षरों की ध्वनि पहचानना
- बाएँ से दाएँ की दिशा में कार्य करना
- चीज़ों का वर्णन करना
- कक्षा के वातावरण में उपलब्ध आम शब्दों का मिलान करना व पहचानना
- भाषायी खेल
- प्रिंट समृद्ध वातावरण
- कहानी व मैगज़ीन के पन्ने पलटना
- पढ़ने व लिखने का अभिनय करना

उपरोक्त भाषा संबंधी कौशल बच्चों के पठन कौशल के लिए आवश्यक मूल कौशलों के न होने के कारण बच्चों का मन पढ़ने में नहीं लग पाता और वे बहुत जल्दी ऊब जाते हैं। कई कारणों में से एक यह भी कारण है कि प्राथमिक शिक्षा के वर्षों में स्कूलों में स्थिरता नहीं बनी रहती।

पठन कौशल या पढ़ना सीखने के लिए लिखित चिन्हों का आस-पास के वातावरण में होना और बच्चों का ध्यान इन प्रिंट और चिन्हों की तरफ आकृष्ट कराना पढ़ना सीखने के लिए एक असरदायक और गतिशील तरीका साबित हो सकता है। प्रारंभिक साक्षरता और पढ़ने के

कौशल से संबंधित शोध अध्ययनों से भी यह पता चलता है कि पढ़ना सिखने की सफलता या कामयाबी इस बात पर निर्भर करती है कि हम बच्चों को स्कूलों में केवल वर्णमाला पर आधारित रहन प्रवृति शिक्षा दे रहें हैं जिसके कारण बच्चों में प्रोत्साहन की कमी देखी जा सकती है अथवा उन्हें शुरुआत से ही प्रेरक व *Enabling reading* वातावरण दिया जाए, जिसमें बच्चे रट्टू तोते की तरह पढ़ने के बजाय स्वयं प्रोत्साहित और लगनशील रहें।

यहाँ यह बात गौर करने वाली है कि अगर शिक्षक बच्चों पर ध्यान दे और प्रत्येक बच्चे को स्नेह और मन से पढ़ाए तो वह इन बच्चों को भी पढ़ने के लिए प्रेरित कर सकता है। कोमल जो तीसरी कक्षा की छात्रा थी अकसर कक्षा में देर से आती थी और सप्ताह में कई बार अनुपस्थित भी हो जाती थी। किंतु मैंने पाया कि वह आते ही कक्षा के कोने की पहली सीट पर बैठना चाहती थी। देर से आने का कारण पूछने पर उसने बताया कि वह घर की सफाई करती है, खाना बनाती है, बर्तन मांजती है तब स्कूल आती है। कोमल को पढ़ने का बहुत शौक था, उसकी लिखाई साफ नहीं थी, किंतु बाकी बच्चों से पठन कौशल में आगे थी। मैंने यह भी देखा कि थोड़े से प्रोत्साहन से वह और भी प्रयत्न करती थी। उसे आवश्यकता थी शिक्षक के असीम स्नेह और उसमें छिपे गुण को पहचानने की।

शिक्षकों को चाहिए कि बच्चों को उनके स्तर के अनुसार कहानियों की किताबें पढ़ने के लिए दें। उन्हें छोटे समूह में खुलकर बातचीत करने के अवसर दें। बच्चों को छोटे-छोटे विषयों पर बोलने के लिए प्रेरित किया जा सकता है और बजाय कि बच्चों को रटने के लिए कहकर, फिर उन्हें किसी विषय पर 'वार्ता' करवाने से अच्छा उन्हें स्वयं के विचार मुक्त भाव से बोलने दें, चित्र पहेलियाँ, ध्वनि पहेलियाँ बूझने के अवसर दें जिससे बच्चों में सुनने व बोलने के कौशल विकसित हो सकें। कहने का तात्पर्य है कि पाठ्यपुस्तकों के अलावा भी ऐसा बहुत कुछ है जिससे शिक्षक बच्चों को पठन कौशल के अनुभव दे सकता है। शिक्षक को चाहिए कि बच्चों के पूरे व्यक्तित्व के विकास में मदद करें। पढ़ना सीखने के लिए यह बहुत आवश्यक है कि पाठ्यपुस्तकों से बाहर निकल कर बाल-केन्द्रित तरीकों व क्रियाओं का इस्तेमाल किया जाए। ध्यान रखें कि पढ़ना-लिखना सीखने के लिए यह आवश्यक है कि बच्चे भाषा को समझें और उसे अच्छी तरह बोलें, अपने विचारों और भावों को अपनी मातृभाषा में व्यक्त कर पाएँ। कक्षा का प्रेरक, उद्धीप्त व प्रिंट समृद्ध वातावरण बच्चों का आकर्षण अपनी ओर खींचता है, उन्हें पढ़ने के लिए लालायित करता है, उत्साहित करता है।

❑❑❑

जवाहर नवोदय विद्यालय, गाज़ियाबाद के संदर्भ में एक समीक्षात्मक अध्ययन

रमेश कुमार *
वीरेंद्र प्रताप सिंह **

राष्ट्रीय शिक्षा नीति- 1986 के अंतर्गत ऐसे आवासीय विद्यालयों की कल्पना की गई है जो ग्रामीण प्रतिभाओं को आगे लाने का उत्तम प्रयास करेंगे। जवाहर नवोदय विद्यालय इसी का कार्यान्वित रूप है। नवोदय विद्यालय ग्रामीण क्षेत्रों में स्थापित है। राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् द्वारा उपलब्ध कराए गए अवसर के अंतर्गत विगत तीन महीने विद्यालय में रहने तथा उसकी संपूर्ण शिक्षण गतिविधियों से जुड़ने का अवसर मिला। उक्त आलेख उन्हीं अनुभवों पर आधारित है।

जवाहर नवोदय विद्यालय की स्थापना भारत सरकार द्वारा ग्रामीणांचलों के मेधावी बच्चों को गुणवत्तापरक आधुनिक शिक्षा को आधुनिक तकनीकों एवं शिक्षण विधि के साथ उल्लासपूर्ण वातावरण में प्रदान करने के उद्देश्य से की गई है। विद्यालय का आवासीय परिवेश सह-शिक्षा व्यवस्था के अंतर्गत ग्रामीण बच्चों के सर्वांगीण विकास हेतु संपूर्ण परिस्थितियाँ उपलब्ध कराता है, जहाँ मूल्यों पर आधारित शिक्षा बच्चों का चारित्रिक निर्माण करके उन्हें अच्छे मानव के रूप में निखारती है (www.navoday.nic.in)

जवाहर नवोदय विद्यालय मुख्यत: ग्रामीण क्षेत्रों से आने वाले बच्चों के लिए सह-शैक्षिक आवासीय विद्यालय है जिनके उद्देश्य निम्नांकित हैं-

- ग्रामीण क्षेत्रों के प्रतिभावान बच्चों को संस्कृति के सशक्त मूल्यों, मानव मूल्यों, पर्यावरण जागरुकता, साहसिक गतिविधियाँ एवं शारीरिक शिक्षा के साथ-साथ अति उत्तम आधुनिक शिक्षा उपलब्ध कराना। नवोदय विद्यालय में बच्चों को कक्षा छ: में प्रवेश दिया जाता है तथा कक्षा बारह तक शिक्षा प्रदान की जाती है। अब विद्यार्थियों को कक्षा नौ में भी प्रवेश देने की व्यवस्था की गई है।
- यह सुनिश्चित करना कि नवोदय विद्यालय के सभी विद्यार्थी तीन भाषाओं में दक्षता का एक उचित स्तर प्राप्त कर सकें, जैसा कि त्रिभाषा सूत्र में निर्धारित किया गया है।

* *असिस्टेंट प्रोफ़ेसर*, प्रारंभिक शिक्षा विभाग, एन.सी.ई.आर.टी., नयी दिल्ली-110016
** *एसोसिएट प्रोफ़ेसर*, प्रारंभिक शिक्षा विभाग, एन.सी.ई.आर.टी., नयी दिल्ली-110016

- अनुभवों एवं सुविधाओं के आदान-प्रदान द्वारा विद्यालयी शिक्षा की गुणवत्ता में सुधार के लिए प्रत्येक जिले में आदर्श विद्यालय की भूमिका निभाना।

प्रस्तुत समीक्षात्मक अध्ययन क्षेत्र निरीक्षण के अंतर्गत जवाहर नवोदय विद्यालय, बढ़ायला, कलछिना, गाजियाबाद में सतत् चार महीने रहने एवं उसकी संपूर्ण गतिविधियों में सहगामी होने के आधार पर प्रतिवेदित है। विद्यालय के संपूर्ण वातावरण को निरीक्षित करने के लिए निम्नलिखित पाँच उपकरणों का प्रयोग किया गया है -

1. असंरचित साक्षात्कार अनुसूची-
   (क) छात्र
   (ख) अध्यापक
2. प्रधानाध्यापक साक्षात्कार अनुसूची
3. स्टाफ नर्स साक्षात्कार अनुसूची
4. गैर-शैक्षणिक कर्मचारी साक्षात्कार अनुसूची
5. फोकस ग्रुप डिस्कशन-
   (क) छात्र
   (ख) अध्यापक

उपरोक्त अध्ययन के अंतर्गत इस्तेमाल किए गए उपकरणों की प्रकृति निम्नानुसार है (क्रुगर, 1998 और सिंह, 1998) -

असंरचित छात्र साक्षात्कार अनुसूची - इसके अंतर्गत साक्षात्कारकर्ता विषय से बेहतर संबंध स्थापित करके पूर्व संरचित प्रश्नों की सूची प्रस्तुत नहीं करता है, बल्कि बातचीत का क्रम स्थापित करते हुए विभिन्न प्रकार के वांछित प्रश्न पूछता है। ये प्रश्न पूर्व निर्धारित नहीं होते हैं। प्रश्न साधारण से विशिष्ट प्रकृति के होते जाते हैं, और विशिष्ट प्रकृति के प्रश्न सूचना के संग्रहण में सहायक होते हैं।

साक्षात्कार अनुसूची - इसके अंतर्गत विषयी (प्रधानाचार्य, स्टाफ नर्स एवं गैर-शैक्षणिक कर्मचारियों से बेहतर संबंध स्थापित करते हुए आमने-सामने बैठकर (Face to Face mode) साक्षात्कार आयोजित किया गया। पूछे गए प्रश्नों की प्रकृति सामान्य थी ताकि मूलभूत प्रश्नों का जवाब ढूँढ़ा जा सके।

फ़ोकस ग्रुप डिस्कशन - इसके अंतर्गत सात से आठ शिक्षक, छात्र एवं छात्रा के अलग-अलग तीन समूहों में अलग-अलग विषयों पर बातचीत की गई है। वार्तालाप के आधार पर विद्यालय से संबंधित सूचनाओं को संग्रहित किया गया है।

उपरोक्त उल्लेखित उपकरणों के अनुप्रयोग के आधार पर जो सूचनाएँ संग्रहित हुई हैं, उन्हें निम्न शीर्षकों के अंतर्गत सूचीबद्ध किया गया है-

1. **विद्यालय की सुरक्षा** - विद्यालय पूरी तरह से पक्की चहारदीवारी से घिरा हुआ है। विद्यालय के मुख्य द्वार पर चौकीदार की तैनाती रहती है जो प्रत्येक आगंतुक का अभिलेख रखता है, परंतु मजबूत चहारदीवारी के बावजूद भी कई बार विद्यालय से बच्चे चहारदीवारी को लाँघ कर भाग जाया करते हैं। शिक्षक एवं बच्चों दोनों से इस बारे में पूछने पर यह बात प्रकाश में आई कि अकसर कक्षा

छः एवं कक्षा सात के बच्चे विद्यालय छोड़कर भागते हैं या भागने का प्रयास करते हैं। घर छोड़कर विद्यालय आने पर बच्चे विद्यालयी वातावरण में समायोजित नहीं हो पाते, परिणामतः अकसर घर भागने का प्रयास करते हैं। इसके विपरीत छात्राएँ ज़्यादा अनुशासित रहती हैं और वे विद्यालय से भागने का प्रयास छात्रों के अपेक्षा कम करती हैं।

2. **शिक्षकों पर अतिरिक्त दबाव**– विद्यालय में छात्र ग्रामीणाँचलों से आते हैं। ग्रामीण क्षेत्र में आवासीय विद्यालय अवस्थित होने के चलते छात्रों के निष्पत्ति/परिणाम का संपूर्ण दायित्व अध्यापकों पर होता है। अतः यदि छात्र बेहतर प्रदर्शन नहीं करता है तो इसकी जवाबदेही अध्यापकों की ही होती है। इन परिस्थितियों में अध्यापकों को विशेष कक्षा आयोजित करने का प्रबंध करना पड़ता है।

3. **प्रतिबंधित सामग्री का प्रयोग** – विद्यालय परिसर में बच्चों द्वारा मोबाइल के प्रयोग पर पूर्ण प्रतिबंध है। परंतु प्रतिबंध के बावजूद भी छात्रों द्वारा विभिन्न छात्रावासों में इसका इस्तेमाल किया जाता है। सह–शिक्षा वाले इस विद्यालय में किशोरावस्था के बच्चे मोबाइल फोन का प्रायः गलत इस्तेमाल करते हैं। छात्रावास के गृहपतियों से बातचीत करने पर अनेक उदाहरण प्रकाश में आए जिसमें अभिभावकों ने येन–केन–प्रकारेण अपने बच्चों को मोबाइल फोन उपलब्ध कराया है।

4. **सामाजिक–आर्थिक पिछड़ापन**– ग्रामीण आँचलों से आए हुए अधिकांश छात्रों की पारिवारिक स्थिति आर्थिक रूप से सुदृढ़ नहीं होती है। वे आर्थिक रूप से संपन्न नहीं होते हैं। विद्यालय में प्रवेश के बाद प्रत्येक वर्ष छात्रों को निर्धारित संख्या में दैनिक उपयोग की आवश्यक सामग्री एवं शैक्षिक कार्य हेतु पेन, कॉपी, डायरी आदि चीज़ें मिलती हैं, जिसे बच्चे अकसर अपने घर उपयोग हेतु भेज देते हैं।

5. **परामर्शदाता** – विद्यालय में सभी बच्चे पूर्व किशोरावस्था एवं किशोरावस्था की दहलीज़ पर होते हैं। किशोरावस्था के बारे में तो स्टेनले हॉल ने यहाँ तक कहा है कि "किशोरावस्था तनाव एवं तूफान की अवस्था है" अर्थात किशोरावस्था के दौरान छात्र एवं छात्राओं में तमाम शारीरिक एवं मानसिक परिवर्तन होते हैं (कोलमैन, 1978)। इन परिवर्तनों की समझ न होने की दशा में बच्चे अनेक प्रकार की भ्रांतियों एवं संदेह को उत्पन्न करते हैं। अकसर बच्चे अज्ञानतावश तमाम विकृतियों का शिकार हो जाते हैं। अतः उन्हें इस स्थिति से निकालने के लिए परामर्शदाता की आवश्यकता होती है। विद्यालय में परामर्शदाता का कोई प्रावधान नहीं है। छात्राएँ अपने अत्यंत निजी अनुभवों को किसी के साथ बाँट

नहीं सकतीं। इस बिंदु पर संबंधित लोक अधिकारियों को तात्कालिक रूप से विचार करना चाहिए।

6. **छात्रावास का संचालन** – विद्यालय में छात्र एवं छात्राओं के लिए अलग-अलग छात्रावासों का संचालन विद्यालय प्रबंधन द्वारा किया जाता है। विभिन्न छात्रावासों के लिए अलग-अलग छात्रावास अधीक्षक (गृहपति) एवं वार्डबॉय की आवश्यकता महसूस की जाती है, जिससे अध्यापकों पर शिक्षण कार्य के अतिरिक्त छात्रावास अधीक्षक का अतिरिक्त दबाव न हो, और वे शैक्षणिक गतिविधियों में अपनी तरफ से सर्वोत्तम परिणाम देने का प्रयास कर सकें।

7. **राजीव गाँधी स्मृति वन** – विद्यालय के अंतर्गत एक छोटा-सा उपवन विकसित करने का प्रयास किया गया है। बच्चों एवं कर्मचारियों की मदद से इस उपवन को विकसित करने के दो उद्देश्य हैं –

   (क) नवोदय विद्यालय के संस्थापक भारत गणराज्य के भूतपूर्व प्रधानमंत्री स्वर्गीय राजीव गाँधी को श्रृद्धा सुमन अर्पित करना, और

   (ख) छात्रों में पर्यावरण के प्रति सजगता एवं उपादेयता उत्पन्न करना।

विद्यालय द्वारा विकसित उपवन को वर्तमान में बच्चों एवं कर्मचारियों द्वारा पूर्ण सहयोग प्राप्त न होने के कारण उक्त उपवन अपनी आभा/सौंदर्य खोता जा रहा है।

8. **संविदा पर आधारित शिक्षक की पदस्थापना** – विद्यालय में स्थायी/विनियमित अध्यापकों की कमी होने के कारण विद्यालय प्रबंधन को संविदा पर आधारित शिक्षकों की अस्थायी नियुक्ति करनी पड़ी है। परंतु कतिपय निजी कारणों से ऐसे अध्यापक प्रायः शैक्षणिक सत्र के बीच में ही विद्यालय छोड़ कर चले जाते हैं, जिसके परिणामस्वरूप शैक्षणिक सत्र का अकादमिक कार्य निश्चित रूप से बाधित होता है। इस मुद्दे पर बच्चे प्रायः विनियमित अध्यापकों की विद्यालय में कमी होने की शिकायत करते हैं।

9. **बीमार छात्रों के देखभाल के लिए वार्ड**– विद्यालय के आवासीय परिसर में लगभग 400 बच्चे रहते हैं। कभी-कभी उनमें से कुछ बच्चे बीमार भी हो जाते हैं। सह-शिक्षा वाले इस विद्यालय में शौचालय के साथ अलग-अलग दो-तीन बिस्तरों वाला एक वार्ड भी होना चाहिए। स्वास्थ्य संबंधी इस बिंदु पर विद्यालय प्रबंधन का ध्यान अपेक्षित है।

10. **जागरुकता अभियान** – जिले में कुछ विशेष ग्रामीण क्षेत्र हैं जहाँ से बच्चे विद्यालय में आते हैं। मुस्लिम बाहुल्य वाले इलाके में जागरुकता की कमी होने के कारण कई अभिभावक अपने बच्चों को स्कूल में दाखिला नहीं दिला पाते हैं। अतः जिले में मज़बूती से छात्रों के विद्यालय में प्रवेश हेतु जागरुकता अभियान चलाने

की आवश्यकता है जिससे गाज़ियाबाद का संपूर्ण ग्रामीण क्षेत्र लाभान्वित हो सके। इस कार्य को संपादित करने हेतु कम्यूनिटी रेडियो प्रोग्राम, स्थानीय समाचार पत्रों में व्यापक प्रवेश परीक्षा से संबंधित विज्ञापन आदि द्वारा प्रसारित/प्रचारित करने की व्यवस्था का समायोजन संबंधित विभाग द्वारा किए जाने की अविलंब आवश्यकता प्रतीत होती है।

आभार

लेखकगण इस शोध प्रपत्र को कार्य रूप में दिए जाने हेतु एन.सी.ई.आर.टी. प्रशासन, नयी दिल्ली एवं जवाहर नवोदय विद्यालय प्रशासन, गाज़ियाबाद द्वारा उपलब्ध करायी गई आवश्यक आर्थिक एवं प्रशासकीय सुविधाओं हेतु अत्यंत आभारी हैं।

संदर्भ-सूची

क्रुगर, ए.आर. 1998, *ऑनलाइनिंग एंड रिपोर्टिंग फोकस ग्रुप रिजल्टस,* सेज पब्लिकेशन, लंदन.

सिंह, ए.के. 1998, *मनोविज्ञान, समाजशास्त्र तथा शिक्षा में शोध विधियाँ,* मोतीलाल बनारसी दास प्रकाशन, दिल्ली.

कोलमैन, जे.सी. 1978, करेन्ट कन्ट्रडिक्शन्स इन एडैलसेन्स थ्योरी, *जनरल ऑफ़ यूथ एंड एडैलसेंस,* 7(1):1-11.

www.navoday.nic.in

पुस्तक के पन्नों से

11

प्राथमिक शाला में शिक्षक*

गिजुभाई बधेका

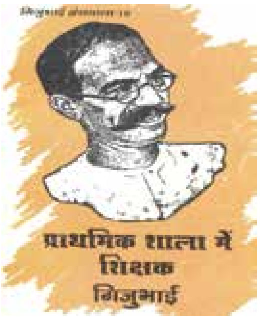

शिक्षा के यथार्थ को भेदने में सुप्रसिद्ध शिक्षाविद् गिजुभाई का कोई सानी नहीं। वे अध्यापक की लाचारी को जानते थे और व्यवस्था की क्रूरता को छिपाने की उन्हें ज़रूरत न थी। स्कूल की मरुभूमि में बच्चे की यातना उनसे न देखी गई और यही विवशता उनके शैक्षिक प्रयासों और लेखन का स्रोत बनी। गिजुभाई ने शिक्षा संबंधी अनेक किताबें लिखी हैं, जिनका हिंदी अनुवाद भी हुआ है। इन्हीं में से एक किताब है- प्राथमिक शाला में शिक्षक। यह पुस्तक मोंटेसरी बाल शिक्षण समिति राजलदेसर (चूरू) से प्रकाशित है। इस किताब का मूल्य तीस रुपये है। ***'प्राथमिक शाला में शिक्षक'*** *से कुछ लेख नीचे दिए जा रहे हैं।*

फ़ुर्सत में करने के काम

गाँव के अध्यापकों को ज़ाहिर तौर पर फुर्सत रहती है। अगर शहर के अध्यापक मिथ्या दौड़-भाग और झँझटों से स्वयं को बचा सकें तो वे भी फुर्सत प्राप्त कर सकते हैं। अवकाश या फुर्सत के इस समय को हमें अपनी आर्थिक स्थिति सुधारने में लगाना चाहिए। सपने पालने से आर्थिक हालत सुधरने वाली नहीं। इसका एक ही उपाय है और वह है कोई-न-कोई उद्योग करना। शहर का अध्यापक शिक्षाशास्त्र में अपने अध्ययन को बढ़ा कर शिक्षण विषय में पारंगत होने का उद्यम करे तो एक लेखक या व्याख्याता के रूप में वह भविष्य में अपनी प्रतिष्ठा अर्जित कर सकता है। शहर का अध्यापक अपने अवकाश के समय में व्यापारी का हिसाब-किताब लिखने का काम सँभालता है, तो वह उसे शोभा नहीं देगा। हाँ, शहर के अलग-अलग पुस्तकालयों में वह ग्रंथपाल का काम संभालने का काम कर सकता है। एक काम यह भी किया जा सकता है कि अध्यापक अच्छे-भले अखबार पढ़कर सुनाएँ और उसके लिए पारिश्रमिक अर्जित करें। इस समय अखबार पढ़कर सुनाने वाले लोग कमाई कर सकते हैं, यह सर्वविदित बात है। इसके अलावा शिक्षक अक्षरशाला चला कर उस सेवा के बदले थोड़ा-बहुत पारिश्रमिक प्राप्त कर सकते हैं। श्रेष्ठ अध्यापक अगर चाहें तो सर्व-साधारण के लिए सुसंस्कार की, सुशिक्षण और सुवाचन की कक्षाएँ लगा सकते हैं। कोई अध्यापक लोकगीत गाने की अपनी कला बढ़ा कर निजी या सार्वजनिक रूप में उनके प्रदर्शन

* पुस्तक *'प्राथमिक शाला में शिक्षक'* मोंटेसरी-बाल-शिक्षण-समिति, राजलदेसर चूरू, 2006 से साभार

करके दो पैसे कमा सकता है, तो कोई समाज के छोटे-बड़े सभी लोगों को कहानियाँ सुनाकर कुछ पैसे कमा सकता है। अध्यापक की मर्यादा में आने वाले किसी भी विषय में अध्यापक को निष्णात होना चाहिए, लोग अपने आप उसकी उपयोगिता को स्वीकार करेंगे और उसका पारिश्रमिक देंगे।

दो-चार अध्यापक मिलकर विद्यार्थियों के लिए स्वदेशी चीज़ों का भंडार खोल सकते हैं, बाल-साहित्य प्रकाशन का सहकारी मंडल चला सकते हैं, विद्यार्थियों को भौगोलिक प्रवास पर ले जा सकते हैं, अच्छे-अच्छे प्रदर्शन आयोजित करके विद्यार्थियों की ज्ञान-वृद्धि कर सकते हैं। ये सब काम उद्योग की दृष्टि से, आर्थिक दृष्टि से सोच-विचार कर किए जाएँ, तो दो पैसे कमाये जा सकते हैं।

बच्चों को अनेक तरह की सेवा की ज़रूरत है, अध्यापकगण उन्हें मदद करके पारिश्रमिक के वाजिब अधिकारी बन सकते हैं।

गाँव में शहर वाले काम-धँधे हो नहीं सकते। फिर भी गाँव का अध्यापक अपना दिमाग लगा सकता है, अगर वह गाँव की तथा आस-पास की परिस्थिति का अच्छा अध्ययन करके लोगों को सच्ची सलाह देने लगे तो लोग उसे इसके बदले में पारिश्रमिक दिए बिना नहीं रहेंगे। अध्यापक स्वयं भी फुर्सत के समय में ग्रामीण उद्योग शुरू कर सकता है। अगर वह मेहनत करे और खेत जोते तो दो-एक मन अनाज उगा सकता है, छोटी-सी बाड़ी में साग-सब्ज़ी लगाकर अपना खर्चा निकाल सकता है, या पूरे वर्ष थोड़ी-थोड़ी कताई भी करना शुरू करे तो अपने परिवार को बिना पैसे पहना-ओढ़ा सकता है।

मनुष्य में एकमात्र बुद्धि एवं हृदय की शुद्धि होनी चाहिए-इसी की आज ज़रूरत है। यह भावना शिक्षक में अवतरित हो, ऐसी कामना है।

बाल मंदिर के शिक्षकों से

अपने कपड़े साफ-सुथरे रखें। बाल, हाथ, मुँह, आँख और कान स्वच्छ रखें। नखों को न बढ़ने दें।

चेहरे पर हमेशा प्रसन्नता रखें। यह प्रसन्नता आंतरिक प्रसन्नता की प्रतिच्छाया स्वरूप होनी चाहिए, बनावटी हर्गिज़ नहीं। हमें बच्चों को ढोंगी नहीं बनाना है। शांति और गंभीरता के भाव प्रसन्नता के विरोधी नहीं होते। ये दोनों भाव शिक्षक के चेहरे पर स्पष्ट रूप से दिखने चाहिए।

जिसे नाराज़ होने की आदत हो, जो क्रोध में भर आता हो, उसे बार-बार आइने में अपना चेहरा नहीं देखना चाहिए। आँखें फटी हुई होना, भौंहे तनी हुई होना, होंठ कसे हुए होना और बाल खड़े होना नाराज़गी व क्रोध के लक्षण हैं। प्रसन्नता या अप्रसन्नता, खुशी या क्रोध छिपे नहीं रहते। मनुष्य का चेहरा इन सब भावों का प्रामाणिक आइना है। क्रोधी अध्यापक से विद्यार्थी भी क्रोध की ही शिक्षा लेता है। हृदय में छिपा कर रखे गए क्रोध को बच्चे न जाने कैसे समझ लेते हैं। क्रोध से भरा हुआ व्यक्ति शिक्षण के काम में असमर्थ सिद्ध होता है। उसकी बुद्धि स्थिर नहीं रहती, बौद्धिक शक्ति विकृत हो जाती है।

बच्चों को पीटना, उसे चुप करना, एक स्थान से उठाकर इच्छा के विरुद्ध दूसरे स्थान

पर ले जाना, उसकी माँग को स्वीकार न करना, कुछ छीन लेना आदि-आदि हरकतें क्रोध के कारण बार-बार घटित होती हैं। ये सब क्रोध के बाहरी लक्षण हैं। उक्त स्थितियों में शिक्षण की अनिवार्यता से भी कुछ बातें घटित हो सकती हैं, पर फिर भी क्रोध की उनमें गुंजाइश अवश्य रहती है।

जब बच्चे को कोई सवाल न आए तो क्रोध आता है, जब बच्चा शिक्षक की समझ से शैतानी करता है तो क्रोध आता है, जब वह सोचे मुताबिक काम नहीं करता तो क्रोध आता है जब बच्चा काम नहीं करता बल्कि रोता है तब क्रोध आता है।

होना यह चाहिए कि जब बच्चे को कोई सवाल न आए तो उसका दोष नहीं ढूँढ़ें। ऐसी स्थिति में शिक्षाशास्त्र की पुस्तकें टटोल कर कोई समाधान ढूँढना चाहिए। स्वस्थ बच्चे कभी ऊधम नहीं मचाते। बच्चे के वे सारे कार्य, जो नीति - सम्मत हों और सामाजिक व्यवस्था के विपरीत न हों, उसके हित के कार्य हैं, भले ही वे हमें शैतानी प्रतीत हो। शैतान बच्चे को डाक्टर के पास ले जाएँ, उसे मनोवैज्ञानिक दृष्टि से देखें, आध्यात्मिक दृष्टि से उसके दोषों का निवारण करें। बच्चे हमारे सोचे अनुसार काम करें ही, ऐसे आत्यंतिक विचार को हमें छोड़ देना चाहिए। नीति एवं समाज व्यवस्था की मर्यादा में रहते हुए बच्चे अपनी मर्ज़ी का काम करें। कोई बच्चा शिक्षक को अपमानित करने जैसा आचरण करता है, यह बात भी हम लोग ही मान लेते हैं, जबकि यह बात न तो बच्चे के मन में आती है न ही किसी और के। अगर मिलने वाले लोग आ जाएँ और बच्चा गंदा मलिन नज़र आए तो इसकी परवाह भी नहीं करनी चाहिए। लेकिन हाँ, अगर काम करने के बजाय बच्चा भटकने लग जाए तो हमें सोचना होगा कि उसे ऐसा काम दिया जाए, जो वह करना चाहता है। अन्यथा हमें यही मान लेना चाहिए कि भटकने का काम ही उसके विकास में अत्युपयोगी है।

बच्चे से मार-पीट हर्गिज़ न की जाए और न ही उसे डाँटा धमकाया जाए। 'वैसा करेगा तो अमुक चीज़ नहीं दी जाएगी या ऐसा हो जाएगा।' ऐसे वचन कहना भी एक तरह से बच्चे को सज़ा देना ही है। उसकी इच्छा के विरुद्ध रोकना, उसका हाथ पकड़ कर बिठाना, ज़ोर से उसको दबाना, उसे उठा कर गिराना या जबरदस्ती धक्का देना, ये सब सज़ा देने के तौर-तरीके ही हैं। आँखें दिखाना,भौंहें चढ़ा कर देखना, नाक पर अँगुली रख कर चुप कराना, ज़ोर का सीत्कार करना, रौबीली आवाज़ में गुर्राना, आदि भी सज़ा की ही पद्धतियाँ हैं। बाल मंदिर के बच्चे इस प्रकार की सज़ाओं से मुक्त रखे जाने चाहिए।

दबाकर राज्यों तक को नहीं रखा जा सकता, तो भला बाल मंदिर के बच्चे दबाव में कैसे पढ़ेंगे? हमें बाल मंदिर से दंड और सज़ा को मिटा कर ही संसार से हिंसा, त्रास एवं अत्याचारों को स्थायी रूप से समाप्त करना है। हमें इस बात की चिंता करनी चाहिए कि बच्चे को किसी तरह की सजा देंगे तो हम उसके प्रेम पात्र हर्गिज़ नहीं रह सकेंगे। आने वाला युग स्वराज्य युग होगा। जब हम उसमें हिंसा नहीं

चाहते तो शाला में यह क्योंकर रहेगी? क्योंकर रहनी चाहिए? जब भी कभी हमारे मन में बच्चे पर किसी तरह का दबाव डालने का ख्याल आए तो हमें तत्काल यह बात सोचनी चाहिए कि हम कितने बलवान हैं और बच्चा कितना निर्बल! निर्बल को दंड देना हिंसा से भी बदतर है। बच्चे को सज़ा देकर हम आने वाली पीढी के मूल में हिंसा का जल ही सीचेंगे।

बच्चे को दंड देकर हम अपनी ही असंयमी वृत्ति को प्रदर्शित करते हैं। सोचने की बात है कि हमारा संयम दंड देने में है या दंड न देने के बजाय अपने आप को संयमित रखने में! संयम अच्छा है या असंयम? संयम रखने में भला है या असंयम रखने में? बच्चे को दंड देने में हमारी राक्षसी वृत्ति का अपने आप प्रदर्शन हो जाता है। यदि हमें तय करना है तो हम बच्चे को न मारना, न दबाना सीखें। हर कोई यही कहता है कि दंड दिए बिना बच्चे को रास्ते पर लाना कठिन काम है। भला आसान मार्ग अपनाने में तपश्चर्या है या कठिन में? दंड देने का पाप तो सामने दिख जाता है, पर दंड न देने का पुण्य-फल तो भलाई होने पर ही समझ में आता है। भगवान के पावन एवं निर्दोष स्वरूप सदृश बच्चे के परिचय को हम दंड के विचार मात्र से दूषित न करें। भलाई के शिखर चढ़ने वाली सीढ़ी के सबसे ऊँचे सोपान पर है बाल मंदिर के बच्चों का शिक्षण! गुलाब की कली को कुचलने से, उस पर आघात करने से तो गुलाब खिलेगा नहीं, न ही हम उसकी सुगंध पा सकेंगे। ऐसे ही बच्चे के साथ मारपीट करने से हम उसे मनुष्य नहीं बना सकेंगे। ऐसा करने से उसमें से मनुष्यता की सुगंध नहीं फूट सकेगी।

अगर हमारी भूल-चूक से कभी बच्चों की मार पिटाई हो जाए, तो क्या करना चाहिए?- तपश्चर्या की जाए। उपवास करने से, भोग का त्याग करने से, हाथ मलने से, सिर धुनने से पश्चाताप किया जा सकता है। अगर पुरानी आदत की वजह से बच्चों पर गुस्सा आ जाए, उन पर हाथ उठ जाए, उनकी भावनाओं को दबा दिया जाए तो निराश होने की ज़रूरत नहीं है, संयम लाने की बार-बार साधना करो। मुमुक्षु को संयम के विरुद्ध संघर्ष करने में दुगना जोश चढ़ता है और बहुत मज़ा आता है।

अपने बचपन के दिनों को अगर याद करेंगे तो हम किसी से भी मार-पीट करना नहीं चाहेंगे। बच्चा अपने पूर्वजन्म के संस्कार लेकर जन्म लेता है। माता-पिता भी उसे उत्तराधिकार में बहुत सारे गुण-दोष प्रदान करते हैं। घर से भी उस पर अच्छे-बुरे अनेक प्रकार के प्रभाव पड़ते हैं। मनोवैज्ञानिक, शरीरवेत्ताओं और जीवशास्त्रियों का कहना है कि अपना शारीरिक, मानसिक तथा आत्मिक विकास करने के लिए निरंतर संघर्ष करना है। बच्चे को सज़ा देकर भला उसके पूर्ववत् संस्कारों से मिले गुण-दोषों, परिवार के प्रभावों तथा बच्चे के स्वयं अपने विकास की स्वाभाविक वृत्ति को हम कैसे रोक सकेंगे?

बच्चे के शारीरिक रोगों के लिए दवा देकर इलाज करो, मानसिक रोगों के लिए मनोचिकित्सक के पास जाओ, अन्य रोगों के लिए शिक्षाशास्त्री की दृष्टि से बच्चे का

अवलोकन करो और उसके वाँछित विकास के लिए तदनुकूल वातावरण सृजित करो। पूर्वजन्मों के संस्कार लेकर आने वाले बच्चे अनेक बातों में एक-दूसरे से भिन्नता लिए होते हैं। प्रत्येक आत्मा की मूल अलग-अलग प्रकार की होती है। उसे अलग-अलग तरीकों से ही सुधारा जाता है।

शिक्षाविदों का कहना है कि आप शिक्षा देने की चाहे जैसी व्यवस्था रच दीजिए, बच्चे को दंड आदि देकर चाहे जितना दबा लीजिए, अपनी योजना के अनुरूप मार्ग पर ले जाने की चाहे जैसी कार्यनीति बना लीजिए पर बच्चा उसकी परवाह भी नहीं करेगा। वह उसमें से जब चाहेगा तब छूट निकलेगा और आगे बढ़ेगा। प्रत्येक आत्मा को इस संसार में जो-जो कार्य करने हैं, उन्हीं को पूरा करने के लिए वह प्रयत्न करेगी। आपकी सज़ा, आपकी शिक्षण योजना आदि उसे आगे नहीं ले जा सकेंगे, उल्टे उसके मार्ग में अवरोध ही डालेंगे।

ऐसे में अगर आप बच्चे के लिए कुछ कर सकते हैं तो उसके मार्ग को सीधा कीजिए, मार्ग के काँटे हटाइए, उसके मार्ग के आगे रक्षा के लिए बाड़ बना दीजिए, यानि कि उसके लिए अनुकूल वातावरण रचें, उसके विकास के लिए वाँछित जलवायु उपलब्ध कराएँ। बच्चे को कैसी जलवायु चाहिए, इसका अध्ययन कीजिए। माली पौधों को विकसित करना जानता है, जीवशास्त्री जीवों का लालन-पालन करना जानता है, तो हमें मनुष्यों का पोषण संवर्द्धन करना जानना चाहिए। इस विद्या को जान लेने में हमारा आधा शिक्षक दायित्व पूरा होता है और लगभग संपूर्ण काम पूर्ण होता है।

आप अक्षर ज्ञान और अंक ज्ञान की शिक्षा देने का मोह न रखें। सीखना तो प्राणी मात्र का कर्त्तव्य है, उसकी ज़रूरत है। पहले पहल हमें यह बात सीखने की है कि किस तरह की शिक्षा देने से मानवता का विकास होता है, अंक ज्ञान और अक्षर ज्ञान की बात इसके बाद की चीज़ है। मैं तो अंक ज्ञान और अक्षर ज्ञान का विरोधी हूँ। लेकिन मैं जानता हूँ कि अमुक उम्र में बच्चा अंक और अक्षर सीखना चाहता ही है और इसीलिए बाल मंदिर में इसके शिक्षण की व्यवस्था है। अगर कोई बच्चा अंक ज्ञान लेने के लिए बाल मंदिर में नहीं आना चाहता है तो इसकी रत्ती भी चिंता न करें। अनभूखे बच्चे को खिलाना गलत बात है। भूख लगते ही बच्चा अपने आप बिना कहे खाने चले आता है। ऐसे ही ज्ञान की भी बच्चे को भूख लगती है।

अगर बच्चे को समाज के अंदर रखना है तो उसे समाज के वातावरण में ही रखना पड़ता है, उसे बोलना सिखाने के लिए भी वहीं रखना पड़ता है जहाँ समाज के लोग-बाग आपस में बोलते हैं। ठीक इसी तरह अगर बच्चे को अक्षर ज्ञान देना हो तो जहाँ अक्षर ज्ञान की ज़रूरत पड़ती हो, और जहाँ अक्षर ज्ञान का उपयोग होता हो, वहीं बच्चे को रखना पड़ेगा। तभी बच्चा अक्षर एवं अंक ज्ञान आसानी से सीख सकेगा। सोचने की बात है, बच्चे को चलना और बोलना सिखाने के लिए क्या कभी स्कूल की ज़रूरत पड़ती है? मात्र अक्षर ज्ञान और अंक ज्ञान बच्चे के जीवन की अनिवार्यता होनी चाहिए। अगर अनिवार्यता नहीं है तो उसे ये सब सिखाने के लिए खटपट करने की ज़रूरत नहीं

है। लेकिन अगर अनिवार्यता है तो वह बच्चा ज़रूर सीखेगा। अंक ज्ञान और अक्षर ज्ञान की तृषा तथा शिक्षण की व्यवस्था-स्वाभाविकता किस प्रकार के विकास से बच्चे में पैदा होती है, अगर यह बात आप जान लें तो हमें उसी के बारे में काम करने की बात सोचनी रहेगी। पर हमारा काम माली जैसा है, लेकिन महज़ माली जैसा ही नहीं। हमें पता है कि बीज के अनुरूप ही वृक्ष तैयार होगा, पर बीज के दोषों को दूर करना हमारा काम है। हमें बीज को सिर्फ अनुकूलता ही प्रदान नहीं करनी, अपितु सामाजिक और नैतिक वातावरण में उसे जीने योग्य भी बनाना है। इसीलिए हम दृष्टा और प्रेरक हैं।

शिक्षक की स्वीकारोक्ति

मैं एक शिक्षक हूँ। मैंने एक स्थान पर 'टीचर्स कन्फेशंस' नामक लेख का शीर्षक पढ़ा और मेरी इच्छा हो आई कि अपने कन्फेशंस कबूल तो करूँ?

वर्षों से मैं शिक्षण व्यवसाय में कार्यरत् हूँ। शिक्षक बनने की अर्हता प्राप्त करने के लिए मैंने किसी वक्त में शिक्षाशास्त्र एवं शिक्षण पद्धति का जो कुछ ज्ञान हासिल किया था, उसमें बहुत कम वृद्धि कर पाया हूँ।

मैं सार्वजनिक पुस्तकालयों में जाता हूँ, पर शिक्षा संबंधी पत्रों को शायद ही कभी हाथ लगाता हूँ। लाइब्रेरियन की इश्यू बुक पर नज़र डालता हूँ तो मेरे नाम पर चढ़े हुए कई ग्रंथ तो दिखते हैं, पर शिक्षा संबंधी एक भी ग्रंथ उनमें नहीं दिखता।

मेरी अध्ययन करने की ज़रूर आदत है। शुरू-शुरू के वर्षों में पाठ्यपुस्तकों और तत्संबंधी जानकारियाँ बढ़ाने में व्यस्त रहता था। अब तो मात्र कभी-कभार पाठ्यपुस्तक बदलती हैं, अतः सिर्फ उसे देखना ही काफ़ी होता है। मेरी अध्ययन परिधि में दैनिक व मासिक पत्रों के अलावा इधर-उधर की औपन्यासिक कृतियाँ हैं।

शाला समाप्ति के बाद शिक्षण-संबंधी बातचीत शायद ही कभी करता हूँ। किसी को डिसमिस करने की, किसी के प्रोमोशन की, फॉर्म देने की, परीक्षा की, उच्चाधिकारी की अथवा स्टाफ, बुकसेलर आदि-आदि की बातें मेरी चर्चा का मुख्य विषय होती हैं।

हम सभी शिक्षक बंधु अर्धअवकाश में चाय-पानी के लिए जब साथ-साथ मिलते बैठते हैं, तब बहुत सारे विषयों पर हमारे बीच बातचीत होती है; पर बच्चों को कैसे सिखाएँ, शिक्षण के उपकरणों और विद्यार्थियों आदि के संबंध में बातचीत नहीं होती और बातचीत का कोई प्रयोजन तक नहीं रहता।

शाला का समय निश्चित है। अभ्यास-क्रम स्थिर है। घंटी से समय बदलता जाता है और फिर बच्चों को परीक्षा के लिए तैयार किया जाता है। शिक्षण-पद्धति का क्रम बना हुआ है। विद्यालय जाता हूँ। रोजाना वाले पाठ पढ़ाता हूँ। कुछ युक्ति से, कुछ शक्ति से, कुछ प्रतिभा से और मुख्यतः विद्यालयी अनुशासन के नियमों से व्यवस्था बनाए रखता हूँ, और काम करता जाता हूँ।

किसी विषय को गहराई में उतरकर नहीं पढ़ाता। इसका कारण यह है कि परीक्षा के

लिए जितना सिखाना ज़रूरी है, उससे अधिक पढ़ाने को समय कम पड़ता है, विद्यार्थियों को बेकार की देर लगती है, और अधिकारी को भी बेकार का दिखावा करना पड़ता है।

विद्यार्थियों को मैं मात्र नाम से जानता हूँ या फिर इस तरह से कि अमुक-अमुक को पाठ याद है, अमुक-अमुक को नहीं। उनकी पारिवारिक-पृष्ठभूमि कैसी है?, मैत्री कैसी है?, मनोवृत्ति कैसी है?, आदि को लेकर मैं कुछ भी नहीं जानता। उनके और मेरे बीच नज़दीकी संबंध हैं भी नहीं। उनकी बुद्धि की तो कुछ जानकारी है मुझे, पर उनके हृदय के संबंध में मैं अज्ञात हूँ।

प्रथम कौन है और अंतिम कौन है, यह मैं देखता हूँ पर उनकी शारीरिक शक्ति एवं अशक्ति का मुझे अता-पता नहीं। जो विद्यार्थी काम करके ले आते हैं वे होशियार हैं और वे मुझे अच्छे लगते हैं; बाकी के मुझे बिल्कुल पसंद नहीं आते। उनका मेरे प्रति या मेरा उनके प्रति कोई विशेष प्रेम या अनुराग नहीं। ऐसे में हम परस्पर विश्वास तो पाएँगे ही कैसे? वे मुझसे डरते हैं, तो मैं उन पर अधिकार जताता हूँ।

विद्यालय छोड़ने के बाद किसी अपमान करने वाले विद्यार्थी को तो छोड़ दें, और शायद ही कोई याद आता होगा। वे अपने घर भले, मैं अपने घर। लेटे-लेटे उनके बारे में यह विचार ज़रूर आता है कि अब परीक्षा आने वाली है, फटाफट दोहराने का काम करा दूँ, इसलिए अर्धअवकाश में भी काम कराना है।

मैनें बच्चों के घर नहीं देखे, और अपना घर भी उन्हें नहीं दिखाया। ऐसा कोई संबंध मैंने बच्चों के साथ रखा नहीं।

मेरा सपना है कि प्रोमोशन पाते-पाते आचार्य बनूँ और नौकरी के वर्ष पूरे करके रिटायर होने पर पेंशन पाऊँ। मेरी वृद्धावस्था आने से पहले पाँच पैसे बचा कर अलग रखने की भी इच्छा है। तभी तो मैं ट्यूशनें भी करता हूँ।

मेरी इच्छा है कि जात-बिरादरी में ठीक-ठाक समझा जाऊँ, लड़कों-बच्चों को अच्छी तरह पढ़ा-लिखाकर काम पर लगा दूँ, और फिर शादी-ब्याह करके आराम की ज़िंदगी बिताऊँ।

इन सब के लिए काम करने की मेरी इच्छा है। आज शिक्षण का व्यवसाय भी मेरे लिए एक प्रवृत्ति है, एक काम है। ऐसे में शिक्षण का आदर्श, शिक्षण की परिवर्द्धित पद्धति से पढ़ाने का आग्रह, शिक्षा में नवाचार करने की उत्कंठा-ये सब मुझमें हैं भी नहीं, तो आएँगे कहाँ से! आज मेरी जो स्थिति है, वह मुझे अच्छी तरह समझा देनी चाहिए। मेरी अपनी हालत तो यह है, दूसरे शिक्षक बंधुओं की भी शायद ऐसी ही होगी।

❑❑❑

बालमन कुछ कहता है 12

चित्रकथाएँ, कार्टून और किताबों में मज़ा

सृष्टि सहाय*

मैंने एक मर्तबा पिताजी और उनके दोस्तों को समानता के मुद्दे पर बहस करते हुए देखा था। उनकी बातों में मुद्दे बेहद नीरस लगे थे। वैसे तो इस बात को गुज़रे लगभग डेढ़ साल हो गया। पर समानता का मुद्दा मेरे दिमाग में एक प्रश्न बन कर रह गया था। उस समय मुझे समानता शब्द के बारे में कुछ नहीं पता था। पिछले साल मैंने जुलाई माह में केंद्रीय विद्यालय 39, जी.टी.सी. वाराणसी की सातवीं कक्षा में दाखिला लिया और मज़े की बात तो यह थी कि जब मैं वहाँ निर्धारित कक्षा में गई तब हमारे अध्यापक सामाजिक एवं राजनीतिक जीवन की किताब की एक चित्रकथा के माध्यम से समानता के बारे में बता रहे थे। मुझे सबसे अच्छा समानता के बारे में तब समझ में आया जब मैंने अपनी किताब का चित्रकथा का कोना समझा। और इस चित्रकथा के साथ जुड़े संवाद मैं आप सबके साथ बाँटना चाहती हूँ, जिससे आप यह सोचने पर मजबूर हो जाएँ कि हमारे देश में क्या समानता की बात, हमारे आस-पास के गरीबों के लिए काफ़ी है? चित्र में चुनाव के दिन कांता और उसकी दोस्त सुजाता वोट डालने की बारी का इंतजार कर रही थीं। बातचीत कर रही थीं। बातचीत की बानगी कुछ इस तरह है–

कांता– कितनी अच्छी बात है न सुजाता, कि हम सब अपने देश में समान नागरिक के रूप में वोट डाल सकते हैं। जैन साहब भी हमारे इसी लाइन में खड़े हैं।

सुजाता– हाँ, बिल्कुल। चल कांता अब तेरी बारी आई।

कांता– मैं तो उसे वोट दूँगी, जिसने हमारे मोहल्ले में पानी की पाइप लाइन का वादा किया है। (फिर सुजाता से)–रोमा बुखार से बीमार है, और उसे अस्पताल लेकर जाना है....पर पहले जैन साहब के घर का काम कर आऊँ.... और उनसे कुछ पैसे उधार ले आऊँ...। (घर पर रोमा से)– ले, दवा पी ले, कुछ अच्छा लगेगा तुझे। और मैं जब शाम को लौटूँगी, तो हम अस्पताल चलेंगे ठीक है न। (फिर मन में)– रोमा बार-बार बीमार नहीं हो जाएगी तो क्या होगा। इस बस्ती में तो कभी साफ-सफ़ाई होती ही नहीं है।

(फिर वह वहाँ जाती है, जहाँ वह काम करती है।)

*आठवीं 'स', केंद्रीय विद्यालय, 39 जी.टी.सी., वाराणसी, उत्तर प्रदेश।

मैडम- कोनों को अच्छी तरह साफ करना। (मैडम कांता से)- कांता ये ले तेरे पैसे। पर पहले से पैसे माँगने की आदत मत बनाना, समझी।

कांता-जी मैडम नहीं बनाऊँगी। (उस शाम को अस्पताल में कतार में लगने में कांता रोमा से कहती है)- बस ज़रा-सी देर और बेटी हमारी बारी बस आती ही होगी। (मन में) जैन मैडम और जैन साहब के लिए वोट डालने के लिए लाइन में भले ही लगना ज़रूरी हो पर अपने बच्चों के लिए उन्हें लाइन में लगना ज़रूरी नहीं होता।

ज़ाहिर सी बात है, वोट की लाइन में कांता जैन साहब के समान तो है, लेकिन अन्य सुविधाएँ प्राप्त करने में वह काफी पीछे है। मुझे पिता की बहस का कुछ-कुछ हिस्सा समझ आने लगा।

मैंने कई बार यह देखा कि हम बच्चों को कोर्स की किताबें पढ़ने से ज़्यादा मज़ा कहानियों की किताबें पढ़ने में आता है। क्योंकि उसमें बहुत सारे चित्र बने हुए, हैं और वे रोमांच से भरे है। फिर जब मैंने कोर्स की उन किताबों के बारे में सोचना शुरू किया कि आखिर ऐसा क्यों हुआ होगा कि कोर्स की किताबों में भी कार्टून और चित्रकथाएँ शामिल की गईं? मुझे ऐसा लगा कि हमारे समाज के कुछ जानकारों ने इस समस्या पर बहुत सोच-विचार किया होगा, जिन्हें बच्चों की रुचियों के साथ ही बच्चों से प्यार भी होगा। उन्होंने ही हम बच्चों को शिक्षा के इस पहलू से परिचित कराया। उनके मुताबिक हमारी शिक्षा में शायद कुछ बदलाव बेहद ज़रूरी थे जिससे हम बच्चों और उनसे बनने वाला समाज शिखर तक पहुचँने के काबिल हो। तो उन्होंने बच्चों के मन में रुचि पैदा करने के लिए हमारी किताबों को रंगीन बनाया एवं चित्रकथाओं से भर दिया। और मेरा तो यह मानना है कि सामाजिक एवं राजनीतिक जीवन में कार्टून कोना होने की वजह से हमारी समझ में बढ़ोतरी हुई है। और अब मैं यह भी समझने लगी कि कैसे अरुचिकर बातें भी चित्रकथा और कार्टून के ज़रिए मज़ेदार बन जाती है।

❑❑❑

प्राथमिक शिक्षक पत्रिका के बारे में

साथियों,

प्राथमिक शिक्षक पत्रिका में प्रारंभिक शिक्षा से संबंधित विभिन्न पहलुओं पर आधारित ऐसे लेख प्रकाशित किए जाते है जो एक शिक्षक के लिए उपयोगी हों। इस पत्रिका के कुछ महत्वपूर्ण सरोकार हैं–

- शिक्षा संबंधी महत्वपूर्ण दस्तावेज़ों की जानकारी एवं विवेचन
- समसामयिक शैक्षिक शोध एवं अध्ययनों का विवरण
- समसामयिक शैक्षिक चिंतन
- शिक्षकों एवं शिक्षाविदों के अनुभव
- शिक्षकों एवं अभिभावकों के लिए व्यावहारिक बाल मनोविज्ञान
- शालाओं एवं शिक्षा केंद्रों की समीक्षा
- शिक्षा संबंधी खेल एवं उनकी उपयोगिता
- विभिन्न शिक्षण विधियाँ
- क्रियात्मक शोध और नवाचार
- शिक्षकों के लिए पठनीय पुस्तक के बारे में जानकारी आदि।

कैसे भेजें रचनाएँ

उपरोक्त सरोकारों पर आधारित लेख, संस्मरण, कविताएँ आदि आमंत्रित हैं। कृपया ध्यान रखें कि लेख सरल भाषा में तथा रोचक हों। शोधपरक लेखों के साथ संदर्भ साहित्य की सूची अवश्य दें। लेखों के प्रकाशन के उपरांत समुचित मानदेय की व्यवस्था है। लेखों की त्रुटिरहित टंकित प्रति अगर सी.डी. में भेज सकें तो अच्छा रहेगा। लेख ई-मेल द्वारा भी भेजे जा सकते हैं। अपने लेख निम्न पते पर भेजें–

अकादमिक संपादक
प्राथमिक शिक्षक
प्रारंभिक शिक्षा विभाग
एन.सी.ई.आर.टी.
श्री अरविंद मार्ग,
नयी दिल्ली -110016
ई. मेल- deencert@yahoo.co.in

कैसे बनें सदस्य

इस पत्रिका के सुचारु रूप से प्रकाशन, प्रचार एवं प्रसार के लिए पाठकों तथा लेखकों का सहयोग अनिवार्य है। इस संदर्भ में आपसे निवेदन है कि इस पत्रिका के स्थायी सदस्य के रूप में अपने विद्यालय, संस्थान अथवा स्वयं को पंजीकृत करवाने का कष्ट करें। इसका वार्षिक सदस्यता शुल्क केवल ₹ 260 है और प्रति कॉपी का मूल्य मात्र ₹ 65 है। आशा है आप इस दिशा में शीघ्र ही निर्णय करके विद्यालय, संस्थान अथवा निजी वार्षिक सदस्यता के लिए कार्यवाही करेंगे। वार्षिक सदस्यता शुल्क-पत्र के लिए अपना पत्र स्वनामांकित लिफ़ाफ़े सहित **बिज़नेस मैनेजर, प्रकाशन प्रभाग (एन.सी.ई.आर.टी.) श्री अरविंद मार्ग, नयी दिल्ली-16** को भेज सकते हैं।

कविता

कविता बच्चों को बहुत अच्छी लगती है। कविता के माध्यम से न केवल शिक्षण को रुचिकर बनाया जा सकता है बल्कि बच्चों को कई ज़रूरी बातें भी सिखलाई जा सकती हैं। कविता में भी कुछ ऐसी ही बाते हैं –

छोटी-छोटी बातें

कृष्णा सहगल

पानी को तुम सदा उबालो,
गंदे कीटाणु दूर निकालो ।
गंदा पानी दे बीमारी,
बरतो इसमें तुम होशियारी।
बिन उबला पानी मत पियो,
रहो निरोग और सुख से जियो ।
साग सब्ज़ी चुनकर...,
पहले धोकर ही फ़िर काटो ।
हाथ धोना, तब पकाना,
गली-कूचे का खुला मत खाना ।
घर में रखो सदा सफ़ाई,
इसी में सबकी है भलाई ।
इन बातों का रखो ध्यान,
सबका इसमें ही है कल्याण ।

*39, किरन इन्क्लेव, सिख रोड, सिकंदराबाद - 500 009. आंध्रप्रदेश।

NATIONAL UNIVERSITY OF EDUCATIONAL PLANNING AND ADMINISTRATION (NUEPA)

(Declared by the GOI under Section 3 of the UGC Act, 1956)
17-B Sri Aurobindo Marg, New Delhi-110016 www.nuepa.org

ADMISSION NOTICE 2014-15

(i) M.Phil. Programme (ii) Ph.D. Programme (iii) Part-time Ph.D. Programme

The National University of Educational Planning and Administration (NUEPA) is engaged in capacity building and research in educational policy, planning and administration. NUEPA, which is fully funded by the Ministry of Human Resource Development, Government of India, offers M.Phil., Ph.D. and Part-time Ph.D. programmes in educational policy, planning and administration from a broader inter-disciplinary social science perspective. The research programmes of NUEPA cover all levels and types of education from both national and international development perspectives. NUEPA invites applications from eligible candidates for admission to its M.Phil., Ph.D. and Part-time Ph.D. programmes for the year 2014-15. While selecting the candidates for admission, NUEPA will follow all mandatory provisions in the reservation policy of the Government of India. Admissions to M.Phil., Ph.D. and Part-time Ph.D. programmes will be made purely on the basis of merit following the prescribed criteria of the University.

Fellowships

Selected candidates for the M.Phil. shall be offered stipend and those selected for Ph.D. shall be offered NUEPA fellowship. The NET qualified candidates, who have been awarded Junior Research Fellowship by the UGC and who fulfil the required qualifications, are encouraged to apply.

Eligibility Criteria

Full-time Programmes

(a) A candidate seeking admission to the M.Phil. and Ph.D. programmes shall have a minimum of 55% marks (50% marks for SC/ST candidates and Persons with Disabilities) or its equivalent grade in Master's Degree in social sciences and allied disciplines from a recognized university. Candidates possessing Master's degree in other areas may also be considered if he/she has teaching experience or experience of working in the area of educational policy, planning and administration. (b) A candidate seeking admission to Ph.D. programme shall have an M.Phil. degree in an area closely related to educational planning and administration and/ or exceptionally brilliant academic record coupled with publications of high quality. (c) M.Phil. graduates of NUEPA will be eligible for admission to the Ph.D. Programme after due scrutiny by a Selection/Admission Committee, if they obtain a FGPA of 6 or above on the ten point scale.

Part-time Programme

A candidate seeking admission to Part-time Ph.D. programme is required to meet the following criteria: (i) Should possess the educational qualifications as mentioned in Para (a) above; (ii) Currently, should be in full-time employment; (iii) Should be a senior level educational functionary with a minimum of five years work experience in teaching/research in educational policy, planning and administration.

It will be compulsory to attend one-year full-time course work by all part-time and full time candidates.

Mode of Selection

The University reserves the right to decide the number of seats to be filled in the year 2014-15; the criteria for screening of applications; and the selection procedure of candidates for admission to its M.Phil. and Ph.D. programmes. The mode of selection of candidates will be as under:

Initial short-listing of applications will be carried out on the basis of relevance and quality of the brief write-up (in the prescribed format) in the proposed area of research to be submitted along with the application form. Short-listed candidates will be required to appear for a written test and those qualifying in written test will be subjected to personal interviews to assess their motivation and potential leading to final short-listing and preparation of panel of selected candidates, in order of merit.

Candidates must be possessing the eligibility qualification and submit marks statement latest by the time of entrance examination.

How to Apply

Candidates may apply in the prescribed form for admission to M.Phil. and Ph.D. programmes of the University along with three copies of the brief write-up (in the prescribed format) on the proposed research topic of a contemporary issue within the broad framework of educational policy, planning and administration. For further details, please refer to the M.Phil.-Ph.D. Prospectus, 2014-15 of the University.

The application form and the Prospectus can be obtained from NUEPA by remitting a sum of Rs.200 (Rs.100 for SC/ST candidates) by demand draft in favour of Registrar, NUEPA, payable at New Delhi if required by Post or purchased in person. The Prospectus can also be downloaded from our website: www.nuepa.org and demand draft of Rs.200 (Rs.100 for SC/ST candidates) should be attached with the application at the time of submission to NUEPA.

Last Date of Applications

Application should reach the Registrar, NUEPA, 17-B, Sri Aurobindo Marg, New Delhi-110016 on or before 12 May 2014. For further details, please visit our website www.nuepa.org

– Registrar

गुड्डू का बचपन

नीलिमा*

गुड्डू का मन है उछल कूद करने का,
छम-छम आती बारिश में नहाने का।

पेड़ों पर चढ़ने का,
गिल्ली डंडा खेलने का ।

खट्टे-मीठे आम खाने का,
जामुन साथियों में बाँटने का ।

पर गुड्डू को तो करना है ढाबे पर काम,
झिड़कियाँ सुननी हैं मालिक की ।

छोटे भाई की जिम्मेवारी,
बीमार माँ की दवाई ।

अलसायी आँखों में सुनहरे सपने की जगह,
अब पसर गई है खामोशी ।

गुड्डू भी स्कूल जाना चाहता है,
उम्र की मस्ती को जीना चाहता है ।

पर छिन गया गुड्डू का बचपन,
आहत मासूम कोमल मन ।

यहाँ ख्वाबों के पंख से आसमाँ नहीं,
छोटे-छोटे पग से ज़मीन मापनी है गुड्डू को ।

आओ, बचपन बचाएँ,
एक सार्थक हल के साथ ।

तब लौट आएगा गुड्डू का बचपन,
झरने-सा अबाध बहता गुड्डू का बचपन ।

---

* *पी.ए.* मुख्य लेखा अधिकारी कार्यालय, एन.सी.ई.आर.टी. नयी दिल्ली-110016

रजि. नं. 32427/76

विद्यया ऽमृतमश्नुते

एन सी ई आर टी
NCERT

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्
NATIONAL COUNCIL OF EDUCATIONAL RESEARCH AND TRAINING